विद्यापतिकृत लिखनावली

(मूल और हिन्दी अनुवाद)

सम्पादक

डा० इन्द्रकान्त झा

एम. ए., पी-एच.डी, डी. लिट्०

युनिवरसिटी प्रोफेसर,

मैथिली विभाग, पटना कालेज,

पटना विश्वविद्यालय, पटना

प्रकाशक

इन्द्रालय प्रकाशन,

जे.एफ १, ब्लॉक न० ७/८०

राजेन्द्रनगर, पटना ८०००१६

VIDYAPATIKRIT LIKHANAWALI

डा.इन्द्रकान्त झा

प्रथम संस्करण -1994

मूल्य : 51 =00

प्रकाशनः
इन्द्रालय प्रकाशन
जे० एफ०-1
ब्लॉक नं-7/80
राजेन्द्रनगर -800016

मुद्रकः
राजकम्प्यूटर्स
धरहराकोठी, नयाटोला,पटना - 4
फोन : -660160

भूमिका ....

मिथिला प्राचीन काल से ही मनीषियों का कर्मक्षेत्र रहा है। चौदहवीं शताब्दी के मनीषियों में विद्यापति के विराट व्यक्तित्व, विलक्षण नैसर्गिक प्रतिभा, वैदुष्य एवं युगचेतना का अनुपम समिश्रण था। उनका ध्यान भूत, वर्त्तमान और भविष्य तीनों पर था। इसलिए उन्हें युगद्रष्टा एवं युग स्रष्टा भी कहा जाता है। उन्होंने मिथिला के ओइनवारवंशीय अनेक राजाओं के आश्रय में रहकर संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, अवहट्ठ एवं मैथिली में रचनायें कर मिथिला के साथ-साथ समस्त भारतवर्ष के साहियकारों का मान-सम्मान बढ़ाकर विश्व साहित्य में अपना स्थान जमाया। उन्हें दरबार का चाकचिक्य नहीं प्रभावित किया। उसका फल यह हुआ कि उन्होंने समाज के विभिन्न वर्गो को ध्यान में रखकर रचनाएँ की। उनकी रचनाओं को देखकर ज्ञात होता है कि उन्हें तत्कालीन राजनीति, समाजनीति, धर्मनीति, अर्थनीति का सम्यक ज्ञान था। उन्होंने लोगों के मध्य जो भ्रान्ति धारणायें थी कि संस्कृत के पंडितों को इतिहास एवं भूगोल का ज्ञान नहीं होता है, उसे झूठा प्रमाणित कर दिया। क्योंकि उनके ग्रन्थों पुरूषपरीक्षा और कीर्त्तिलता में ऐतिहासिक तथ्यों का उद्‌घाटन किया गया है। एक ओर पुरूष परीक्षा मे हम्मीरदेव, चिक्कोर के राजा काफरराज, नरसिंह देव, चाचिकदेव, हरिसिंहदेव, विशाखदत्त, हर्ष वराहमिहिर आदि से सम्बन्धित ऐतिहासिक घटनाओं का विवेचन है तो दूसरी ओर कीर्त्तिलता में कीर्त्तिसिंह द्वारा मिथिला-राज्य प्राप्त करने की कहानी के साथ-साथ जौनपुर का वर्णन। इसीलिए बंगला के प्रसिद्ध विद्धान हर प्रसाद शास्त्री ने तो इतना तक कह दिया है कि प्रत्येक इतिहासवेत्ता को पुरूषपरीक्षा अवश्य पढ़नी चाहिए।

पुरूषपरीक्षा एक नीति विषय का ग्रन्थ है। इस पुस्तक में पुरूषार्थ का विवेचन किया गया है। उनका कहना है कि पुरूषाकार व्यक्ति को पुरूष नहीं कहा जा सकता है। पुरूष का लक्षण है:

वीरः सुधीः सविद्यश्च पुरूष : पुरूषार्थवान् ।

तदन्ये पुरूषाकाराः पशवः पुच्छवर्जिता ॥

पुरूष के इन्ही चारों गुणों का वर्णन चार परिच्छेदों में किया गया है । इन चारों परिच्छेदों में पुरूष कौन है, इसके लिए चौआलिस कथाएँ कही गयी है । इन कथाओं द्वारा कलियुग के भूत और वर्त्तमान के पात्रों की जीवनगाथाओं को ऐतिहासिक दृष्टिकोण से उपस्थित किया है । इसक्रम में उनका कहना है कि कृपण, भीरू, चोर, आलसी आदि व्यक्ति पुरूष नहीं है। इसके अलावा पुरूष वह है जो दानवीर, दयावीर, युद्धवीर एवं सत्यवीर है । इसक्रम से उन्होंने समाज के विभिन्न वर्गो के रहन -सहन एवं क्रिया -कलाप को परखने के बाद समाज के लोगों को परिभाषित किया । उनका कहना था कि कृपण वह है जो न तो दान करता है और न भोग करता है, लेकिन धन को प्राण के सदृश रखता है । ऐसे कृपण का प्रातःकाल नाम भी नहीं लेना चाहिए । वंचक वह है जो कूटकर्म मे निपुण, मीठा वचनबोलने वाला कर्म में दारूण एवं दूसरे के धन को हरण करनेवाला होता है । पिशुन वह है जो उपकार करनेवाला से भी द्वेष करता है, निर्दोषी के विषय में भी प्रमाद फैलाता है और अपराध करके भी लज्जित नहीं होता है । विध्यापति ने कौशल, काशी, प्रयाग, नैमिषारण्य आदि तीर्थो में भ्रमण करते हुए भौगोलिक ज्ञान अर्जित करके भूपरिक्रमण नामक ग्रन्थ का निर्माण किया । इस ग्रन्थ में पैंसठ देशों का वर्णन है । कुछ गावों का वर्णन और एक तीर्थ से दुसरे तीर्थ की दूरी का भी हैं । इसमें वर्गित देशों और ग्रामों में प्रमुख है द्रुपददेश, स्वांभुव, कर्णपुर, चतुर्वेदपुर, रवरजरीपुर, लोलपुर, हस्तिनापुर, प्रयाग, मधु, इन्द्रपुर, चकोर नयनी, करेला , राजग्राम, वेणी, नाकदेश, काशी, हड्डिपाल, रामरेखा, सिद्धाश्रम, सोमलाली, हरपुर, श्रृंगवीर, सातमीपुर, दर्दुरकक्षेत्र, वलिग्राम, ताजपुर, चम्पारण देश, मणिहारी, नृसिंहपुर, पाटलिपुत्र, आरानपत्तन, हरिनामदेश, पाटलि, मिथिला , जनकपुर, हिजंगल, विश्वला, धनुष, महाग्राम इत्यादि । अस्तु यह पुस्तक विद्यापति का भौगोलिक यात्रा संस्मरण है । लेकिन ऐसा लगता है कि विद्यापति तीर्थो का वर्णन करके लोगों के हृदय में तीर्थो के प्रति श्रद्धा जगा दी है । इसी प्रकार से काल की गति के प्रभाव से लुप्तप्राय गया श्राद्ध को पुनरूज्जीवित करने के लिए विद्यापति ने 'गयापत्तलक' नामक पुस्तक को लिखकर तत्कालीन समाज मे श्राद्धपद्धिति के महत्व का प्रतिपादन किया । इसके अलावा उन्होंने शिव, दुर्गा आदि देवी देवताओं के साथ-साथ गंगा के प्रति तत्कालीन जनमानस भावनाओं को जगाने के लिए शिव विषयक शैव सर्वस्वसार, शैवसर्वस्व सार प्रमाण भूत पुराण संग्रह, दुर्गा विषयक दुर्गाभक्तिर्तरंगिनी एवं गंगा विषयक गंगावाक्यावली नामक पुष्तकों का प्रणयन किया । इतना ही नहीं उन्होंने मैथिली में दुर्गा स्तुति, शिव स्तुति, रांधाकुष्ण स्तुति, गंगास्तुति आदि स्तुति गीतों की रचना करके शिक्षित से अशिक्षित जनता के हृदय में भी धार्मिक भाव जागृत किया ।

इसी क्रम में जनमानस कवि विद्यापति ने देखा कि पत्रलेखन सम्बन्धी नियमावली का कोई मानदंड नहीं है । अतः इस अभाव को पूर्त्ति करने के लिए उन्होंने 'लिखनावली' नामक

पुस्तक की रचना कर ओइनवारकालीन मिथिला की शासन वयवस्था को व्यवस्थित स्वरूप प्रदान कर समाज के विभिन्न वर्गो के साथ-नियम -व्यवहार सम्बन्धी नियमावली को प्रस्तुत करने का स्तुत्य प्रयास किया है ।

यह पुस्तक अल्पज्ञ को ज्ञान हेतु, वहुज्ञ को प्रमोदार्थ एवं सज्जनों के लिए प्रीति प्रदर्शन को ध्यान मे रखकर लिखा गया है । इसमें उच्च, निम्न और समान श्रेणी के व्यक्तियों के साथ पत्राचार तथा नियम एवं व्यवहार सम्बन्धी लेखन पद्धति है :-

अल्पश्रुतोपदेशाय कोतुकाय वहुश्रुताम ।
विद्यापतिस्सतां प्रीत्यै करोति लिखनावलीम् ।।३।।
उच्चैः कक्षमधः कक्षं समकक्षं नरम्प्रति ।
नियमे व्यवहारे च लिख्यते लिखनक्रमः ।।४।।

उक्त पुस्तक के आधार पर तत्कालीन मिथिला का सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक जीवन का जीता जागता चित्र उभरकर आता है । इसक्रम में हम देखते हैं कि तत्कालीन मिथिला का एक आदर्श और आचारसंहिता प्रशंसनीय रहा है । उच्चकक्षा में सर्वप्रथम गुरू का स्थान दर्शाया गया है । गुरू का क्या गुण था । वे किन-किन नियमों का पालन करते थे उसका जिक्र विभिन्न पत्रों में किया गया है । इसी कारण से गुरू का आदर राजा भी करते थे । राजा समय-समय पर गुरू के आश्रम में धन-सम्पत्ति भेजते रहते थे । गुरू के साथ-साथ समाज में श्रेष्ठ जनों का भी आदर और सम्मान अनुकरणीय रहा है । विध्यापतिकालीन मिथिला में सामन्ती प्रथा थी । मिथिलाधिपति महाराजाधिराज और महासामन्ताधिपति कहालाते थे । उनके अधीन अनेक सामन्त रहते थे । समय-समय पर मिथिलाधिपति को अपने सामन्तों के साथ - साथ अन्यान्य सामन्तों से कलह भी हो जाता था । इससे ज्ञात होता है कि ओइनवारकालीन मिथिला में समय-समय पर राजनीतिक अस्तव्यस्तता होती रहती थी । तथापि मिथिलाधिपति में उदारता और प्रजा की भलाई करने की भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी । इसलिए राजा कभी-कभी ग्राम भी बसाते थे और इस क्रम में विदेश से भी यहाँ आकर लोग बसते थे । एक बार राज्य की ओर से रौतपति को एक पत्र लिखा गया कि अपने राज्य में सभी प्रकार की सुविधाएँ विदेश से आकर बसनेवाले को दी जायेगी । इसपर रौतपति लिखते हैं कि आपने जो उजाड़ भूमि में वास के लिए आदेश दिया है, वह श्रीदेवपाद के प्रभुधर्म को सुनकर विदेश से आकर लोग स्वयं बस रहे हैं । वास्तविक बात यह है कि लोग जहाँ संरक्षण पाते हैं और जहाँ राजधर्म में स्थिरता पाते हैं, वहीं निवास करते हैं । इसलिए देश में लोग बस गए, यह विदित हो । इसके अलावा इस पत्र से ज्ञात होता है कि नये बसे लोगों को चौरों और शत्रुओं द्वारा कभी-कभी उपद्रव भी किया जाता था । लेकिन राज्याधिकारी को इसपर पूर्ण ध्यान रहता था । अतएव रौतपति समय-समय पर विदेशियों को कष्ट पहुँचानेवालें चोरों और शत्रुओं को कठिन दण्ड भी दिया करते थे ।

अस्तु, इससे ज्ञात होता है कि तत्कालीन राजा में परिपालन और संरक्षण करने की प्रवल भावनाएँ थी । यहाँ के राजाओं द्वारा शत्रुओं की ओर से पकड़े गए सैनिकों और राज्यधिकारी वर्ग के साथ अच्छे व्यवहार किए जाते थे । इसके अलावा यहाँ के राजा अपने सामन्तों पर अत्यधिक ध्यान देते थे । यदि उनके सामन्तों पर कोई आक्रमण करता था तो वे उन्हें धन और सैन्यवल से मदत करते थे । इसका फल यह होता था कि जिस समय मिथिलाधिपति पर यवनेश्वर का आक्रमण होता था उस समय में उनको सीमावर्ती मिगौं और अपने सामन्तें, द्वारा अनेक प्रकारों की सहायता मिलती थी । लिखनावली के पत्र सं० चौदह में एक सामन्त लिखते हैं कि यदि यवनेश्वर से सन्धि करें तो मैं धन और उपहार की वस्तुएँ भिजवाऊँ । यदि युद्ध करें तो सैन्य भिजवाऊँ और आदेश हो तो स्वयं आकर यथा योग्य कार्य करूँ । इस पत्र से स्पष्ट हो जाता है कि मिथिलाधिपति को यवनेश्वर से कलह भी हुआ था । लेकिन लिखनावली के अनेक पत्रों से स्पष्ट होता है कि कुल मिलाकर तत्कालीन मिथिला में सुख - शान्ति का साम्राज्य था ।

उस समय के न्याय-विभाग के सर्वोच्च अधिकारी को 'महाधर्माधिकरणीक' कहा जाता था । वे धार्मिक सन्देह के निर्णायक, वाचाल वादी के नियंत्रण में बद्धपरिकर, साधुजन को आनन्द देनेवाले, वेदान्त के सिद्धान्त से पवित्र मानस,कपट चातुर्यरूपी अन्धकार के लिए सूर्य के किरण स्वरूप एवं न्यायोचित सभी प्रकारों के गुणों से विभूषित रहते थे। उनका कार्य राज्य में धर्म के लिए सम्यक दृष्टि से न्याय करना था (लिखनावली पत्र सं०१७)।

महाधर्माधिकरणिक के अधीन में अनेक 'धर्माधिकरणिक' रहते थे । वे जहाँ न्याय करते थे उसे 'अधिकरण' कहा जाता था । वहीं पर वादी -प्रतिवादी मुकदमा करते थे । मुकदमा की सुनवाही के समय वादी प्रतिवादी के साथ -साथ साक्षी का भी वयान लिया जाता था । निर्णय में साक्षी के वयान का अधिक महत्व होता था । वल्कि साक्षी के वयान पर ही जीत हार निर्भर करता था । इसलिए यह नियम था कि :

यस्योंचुः साक्षिणः सत्यां प्रतिज्ञांविजयी भवेत् ।
अन्यवादिनों यस्य भवेत्तस्य पराजयः ।।

अर्थात् साक्षी जिसकी प्रतिज्ञा को सत्य कहें वही विजयी होंगे तथा जिसकी प्रतिज्ञा को झूठ कहें उसकी हार होगी । लेकिन साक्षी को यह सपथ - पुरस्सर कहाना पड़ता था कि मैं जो वयान दे रहा हूँ, वह सत्य है ।

वर्त्तमान में जो पंचायतीराज की स्थापना की गयी है उसकी शुरूआत विद्यापति के युग से पूर्व ही हो चुकी थी । कारण लिखनावली से ज्ञात है कि धर्माधिकरण के अतिरिक्त गाँवों में भी पंचों के द्वारा न्याय की व्यवस्था थी । वल्कि यह नियम था कि जिस झगड़े का निर्णय वादी अथवा प्रतिवादी को मान्य नहीं होता था । वही मोकदमा 'धर्माधिकरण' में किया जाता था ।

मिथिला में न्याय व्यवस्था सुधारात्मक थी, दंडित व्यक्ति इसके अलावा, कुछ मामला का निर्णय 'दिव्य' द्वारा किया जाता था। 'दिव्य' एक प्रकार का शपथ है। शास्त्रों में नौ प्रकारों की दिव्यों की चर्चा की गयी है :

घटोऽग्निरूदकञ्चैव विषं कोषश्चध पञ्चमम् ।
षष्टञ्च तण्डुलः प्रोक्तं सप्तमं सप्तमाषकम् ॥
अष्टमं फालमित्युक्तं नवम धर्मजं स्मृतम् ।
दिव्यान्येतानि सर्व्वाणि निर्दिष्टानि स्वयम्भुवा ॥।

आर्थात्, घट,अग्नि, जल, विषकोष, तण्डुल, माष(उरीद) फार, धर्मज नाम का दिव्य है।

'दिव्य' क्या है ? इसके विषय में कहा गया है कि मानव प्रमाण से अनिर्णित जो निर्णय हो वह लोकप्रसिद्ध 'दिव्य' कहलाता है। 'दिव्य' प्रमाण भावैकगोचर नहीं वल्कि यह भावभावविशेषणगोचर है। लिखनावंली (पत्र सं० ८१) में 'जलमज्जनदिव्य' का उल्लेख है। इस 'दिव्य' में व्यक्ति के प्रस्तरभाण्ड से सम्बद्ध कर गहरे जल में दे दिया जाता है। यदि डूब जाता था और पत्थर तैरने लगता था तब वह अपराधी होता था। लेकिन यदि पत्थर डूब जाता था और व्यक्ति तैरने लगता था तब वह शुद्ध अर्थात् अपराधी नहीं समझा जाता था। इसके अतिरिक्त 'जल मज्जन दिव्य' का एक दूसरा तरीका यह भी था कि इसमें व्यक्ति को पानी में बैठा कर तीन वाण छोड़ा जाता था और तब यदि उसे वाण नहीं लगता था तब वह शुद्ध अर्थात् निरपराधी माना जाता था। मिथिला में न्याय व्यवस्था सुधारात्मक थी। दंडित व्यक्ति को सुधरने का मौका दिया जाता था। लेकिन जिसमें सुधारने की क्षमता नहीं थी, उन्हें प्राण दंड दिया जाता था। इसके अतिरिक्त न्याय में एकरूपता थी। इसमें राजा और रंक में कोई भेदभाव नहीं किया जाता था।

तत्कालीन समाज दो वर्गों में बटा था। एक वर्ग धनी-मानी था तो दूसरा वर्ग अकिंचन। एक वर्ग उत्तमर्ण था तो एक वर्ग अधमर्ण। अधमर्ण को कर्ज लेने के समय जामिनी की जरूरत पड़ती थी। तीन प्रकार के यामिनी होते थे – प्रत्यायकलग्नक, दर्शनलग्नक एवं दातृलग्नक। इसके अलावा शिवलिंग का स्पर्श करके भी ऋण लेता था। ऋण लेनेवाला शिवलिंग को स्पर्श कर कहता था कि यदि समय पर मैं ऋण नही दूँगा तो मेरा अनिष्ट हो जाएगा।

तद्युगीन मिथिला के कुछ लोगों का व्यवसाय व्यापार करना था। उस युग में व्यापार स्थल और जल दोनों मार्ग से होता था। अन्तर्देशीय व्यापार के साथ -साथ वैदेशिक व्यापार भी होता था। समाज के कुछ लोग नदी में घटवारी और कुछ लोग हाट पर वस्तुओं को बेचकर अपनी जीविका चलाते थे। इसमें से एक को 'घट्टोपजीवी' कहा जाता था तो दूसरे को हट्टोपजीवी।

तत्कालीन मिथिला मे धार्मिक कट्टरता नहीं थी। लोगों मे सहिष्णुता थी। एक सम्प्रदाय से दूसरे सम्प्रदाय के लोगों में वैमनस्य नहीं था। इसी कारण से महाकवि विद्यापति विभिन्न देवी देवताओं का एकात्मक रूप को निरूपित कर समाज को विश्रृंखलित होने से बचाने का स्तुत्य प्रयास किया।

तत्कालीन मिथिला नरेश के यहॉ धर्मकर्म को देखने के लिए अनेक अधिकारी रहते थे। राज्य मे यजन-याजन एवं शान्ति स्थापनार्थ एक अधिकारी विशेष रहते थे। उन्हें 'शान्तिकरैणिक' कहा जाता था। देव-मन्दिर की व्यवस्था के सर्वोच्च अधिकारी को'महादेवागारिक' कहा जाता था।

अन्ततोगत्वा, मैं यही कहूँगा कि लिखनावली तत्कलीन मिथिला के समाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक जीवन का 'अलवम' है

इसलिए मैं विद्यापतिकृत लिखनावली का प्रचार -प्रसार के लिए हिन्दी अनुवाद पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर रहा हूँ। इस पुस्तक के प्रकाशन में गुरुवर डॉ० दिनेश कुमार झा का जो स्तुत्य सहयोग मुझे प्राप्त हुआ है, तदर्थ मैं उनके प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ।

इन्द्रकान्त झा
पटना कालेज, पटना

अथ विद्यापतिकविकृता लिखनावली

भूत्यर्थिनान्नम्रसुरासुराणा-
मुत्तंसरत्नाञ्चितपादपद्मम् ।
तन्नौमि लम्बोदरमाप्रसादं
यस्मिन् प्रसन्ने सकलार्थसिद्धिः ॥१॥

सर्वादित्यतनूजस्य द्रोणवारमहीपतेः ।
गिरिनारायणस्याज्ञां पुरादित्यस्य पालयन् ॥२॥

अल्पश्रुतोपदेशाय कौतुकाय बहुश्रुताम् ।
विद्यापतिस्सतां प्रीत्यै करोति लिखनावलीम् ॥३॥

उच्चैःकक्षमधःकक्षं समकक्षं नरम्प्रति ।
नियमे व्यवहारे च लिख्यते लिखनक्रमः ॥४॥

तत्रादौ उच्चैःकक्षलिखनानि

स्वस्ति । गुरुषु परमदैवताधिदैवतेषु, परमाराध्येषु, आचारचारुत्वचमत्कारित्वचतुर्म्मुखमानसेषु, विद्यानिर्ज्जितवसिष्ठादिनावहेषु, महामहोपाध्याय श्रीदेवदत्तमहाशयेषु, अमुकग्रामात् अन्तेवासिनः श्रीअमुकस्य मेदिनीमिलिताष्टाङ्गस्य प्रणामपत्रीयम् । श्रीमच्चरणानामनुकम्पया कुशलमत्र । गोचरश्च - श्रीमच्चरणसकाशादधीतव्याकरणोऽहमनध्यायमधिगत्य दिनकतिपयं गृहमागतोस्मि । सम्प्रत्ति प्रत्यासन्ने स्वाध्याये तत्रागत्य शास्त्रमध्येतुमिच्छामि । तेन द्रव्यगुणलीलावतीकुसुमाञ्जलिपुस्तकान्यादर्शत्वेन मयि सन्देष्टुमादेष्टव्यानि । किम्बहुन । पत्रचिह्नार्थं नारिकेलफलचतुष्टयं प्रहितमस्तीति । तत्र प्रहितफल ४ ॥१॥

अपरः प्रकारः

स्वस्ति । अमुकनगरे गीर्व्वाणवाणीगुणोदयपरितोषितसमस्तबुधजनमनोवृत्तिषु कुन्दावदातकीर्त्तिषु सन्मिश्रश्रीमदमुकशर्म्मणां पादपङ्केरुहेषु अमुकग्रामात् श्रीअमुकस्याऽवनतशिरसः प्रणामपत्रीयम् । विज्ञापनञ्च—

श्रीमच्चरणेभ्यो विहितविद्योपादानप्रतिष्ठार्थं गुरुदक्षिणात्वेन प्रहितम्मया सुवर्णशतं तच्चानुग्रहेण संग्रहणीय श्रीगुरुचरणैरिति ।।२।।

स्वस्ति। वाराणस्यां श्रीवीरेश्वरमठेषु वेदान्तसिद्धान्तशुद्धान्तःकरण-वृत्तिषु, यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारध्यानधारणासमाधीत्यष्टाङ्ग-योगाभ्यासवशीकृतसकलेन्द्रियवर्ग्गेषु, त्रिदण्डपरिव्राजकाचार्य्यश्रीमदमुकचर-णेषु राजधानीतः राजश्रीअमुकदेवानां दण्डवत्प्रणतिशतबोधयित्री पत्रीयम्। श्रीमच्चरणानामनुकम्पासम्पादितशुभाशीःप्रसादात् कुशलिनामस्माकं परि-वारेषु मङ्गलं, जनपदेषु शुभाचारः, सैन्येषु सामर्थ्यं, भृत्येषु पवित्रता, शत्रुषु दर्प्पहानिः, कोषागारेषु दोषाभावः, इति सौमनस्यमङ्गीकृतं करणीयम्। सकलसामग्रीसम्पत्तिवार्त्तयास्माकं मनसि सौमनस्यं समर्प्पणीयं प्रयोजनञ्च श्रीमच्चरणानां तीर्थवासिनां (ता) भिक्षासौकर्य्यार्थं सुवर्णशतत्रयं प्रहितमस्ति यत्र (प्रहित) सुवर्णपल १०, एतच्चानुग्रहेण परिग्रहीतुं सन्निधानवर्त्तिषु स्नातकवर्गेष्वाज्ञा कर्त्तव्या तेन तेऽस्मन्नाम्ना भिक्षावस्तूनि कारयित्वा यथाकालमुपनयन्ति। पत्रचिह्नार्थं प्रहित नेपालकम्बल १, शीश-कमण्डलु १ किम्बहुनेति ।।३।।

स्वस्ति। परमाराध्येषु पैशुन्यपरित्यागपवित्रेषु, प्राणधारणकारणस्वी कृताष्टग्रासशकलेषु, श्रीमन्महेश्वरध्यानपरायणमानसेषु, जटाभस्मकपालाभि-सन्द्योतितपाशुपताश्रमपरिग्रहचिह्नेषु, परमतपश्शीलपरममाहेश्वरतत्त्वज्ञान-सम्पन्नगुरुवरश्रीअमुकचरणेषु, अमुकग्रामात् मिश्रश्रीअमुकानामष्टाङ्ग-प्रणतिपत्रीयम्। शिवधर्मादिसकलतश्चरणपरायणाः श्रीमन्तः सर्व्वदा काश्यां तिष्ठन्ति यदा चाहन्तेन पथा समायातस्तदा श्रीमच्चरणैः करुणा-वरुणा लयैर्म्मय्याशिषो दत्ताः तत्फलमिदानीमहं धनवान् पुत्रवान् आयुष्मान-स्मीति निवेदितं भिक्षासामग्री च श्रीमच्चरणान्तेवासिश्रीकरुणाकरब्राह्मण-द्वारा कियत्यपि प्रहितास्ति। सानुग्रहेण परिग्रहणीया। किम्वहुनेति ।।४।।

स्वस्ति। परमाराध्येषु निरुपाधिस्नेहसम्पादितपोषणवर्द्धननयविनय-शिक्षाप्रबोधप्रभुषु श्रीमत्तातचरणेषु अमुकग्रामात् श्रीअमुकस्याऽष्टाङ्गप्रणति-पत्रीयम्। श्रीमच्चरणनां शुभाशंसनानुभावेन कुशलमत्रेति सौमनस्यं विधा-तव्यम्। स्वकीयकुशलोदन्तेन मच्चेतसि परमानन्दः समर्प्पणीयः। प्रयोज-नञ्च—श्रीमच्चरणानामाज्ञां शिरसि निधाय यदर्थमहमागतोऽस्मि तत्कार्य्यं

सम्पन्नकल्पम् । द्वित्राणि दिनान्यत्र स्थित्वा कार्य्यन्निर्व्वाह्य तत्राहमागतप्रायोऽस्मि । ततो मन्निमित्ता चिन्ता न कर्त्तव्या । किम्बहुनेति ॥५॥

स्वस्ति । परमाराध्येषु संसारोत्पत्तिकारणाद्भूतार्थं प्रतिदिनपूजार्हासु श्रीमन्मातृठक्कुरराज्ञीषु अमुकग्रामात, श्रीअमुकस्य भवच्चरणपांशुप्लावितशिरसः प्रणामपत्रीयम् । श्रीमतीनामाशीर्द्दानात् कुशलमिह । तत्रत्यं कुशलं समोहे । विज्ञापनञ्च— यदारभ्य विदूरे तिष्ठामस्तदारभ्य राजसम्मानमनुभवतामप्यस्माकं चेतसि सौमनस्यं भोजनसिद्धिन्नं जायते । यतो येन श्रीमच्चरणानां वात्सल्यमनुभूतं तस्य कुतोऽन्यत्र वृत्तिः । मातृगुणाः किं वक्तव्याः । यतो गङ्गापि मातरित्यभिधाय स्तूयते । ततस्तत्राहमागतप्रायोऽस्मि । विदूरस्थेऽपि मयि मन्निमित्ता कापि चिन्ता न कर्त्तव्या । शुभाशंसनमात्रं विधेयम् । किम्बहुनेति ॥६॥

स्वस्ति । परमाराध्येषु ज्येष्ठभ्रातृषु स्नेहमान्यतोभयव्यतिकरविश्राममहीरुहेषु पितृकल्पेषु ठक्कुरश्रीअमुकमहाशयेषु अमुकग्रामात् श्रीअमुकस्य प्रणामशतपत्रीयम् । श्रीमद्भ्रातृचरणानां स्नेहातिशयात् कुशलमत्र । तत्रत्यञ्च तदीहे । कार्यञ्च निगलबद्धशूद्रस्य अमुकस्य विमोक्षणाय तदादिष्टं तदयं यद्यपि ममापथ्यकारी, मया परमक्रोधेन कार्यतया च बद्धः तथापि श्रीमच्चरणानां लिखनमतिक्रान्तुन्न शक्नोमीति लिखनदर्शनादेवायं मया बन्धमोचितः । तदित्थं सर्वदापि मय्याज्ञाकारिणि स्नेहसन्ततिर्न्न परित्यक्तव्येति ॥७॥

स्वस्ति । अमुकपत्तने उद्दण्ड-पाटमुकुट-सिंहासनछत्रचामरेत्यादि-समस्तप्रक्रियाविराजमानमहाराजाधिराजश्रीमदमुकदेवपादपद्मेषु समरविजयिषु अमुकनगरात् दलपति श्रीअमुकसिंहस्य मौलि-मिलित-करयुगलस्य प्रणामपत्रीयम् । श्रीमद्देवपादानामतुलप्रतापोदयात् कुशलमत्र । गोचरस्तु यैरागत्य विपक्षसामन्तैरस्मदीयसीमनि भूमिराक्रान्ता तेषु मया ध्राटकं कृतं तैरग्रेगता अस्मदीययोधाः शरासारैः पराङ्मुखीकृताः । तत्र पश्चान्मया गत्वा तैः समं युद्धं कृतम् । युद्धे क्रियमाणे बहवः शत्रुपक्षपदातयः साटोपगजघटाघोटकपदाघातैरेव चूर्णीकृताः । समरस्थले शोणिततरङ्गिणी वाहिता । श्रीमत्प्रतापोदयान्मया जितमिति विपक्षशिरोभिरेव गोचरीभविष्यति अस्मद्बलेऽपि ये योधाः समरे पतिता ये च क्षतिनो भूताः तेषांपत्ता लिखित्वा प्रहितैवास्ति । तदेतेषु प्रभुधर्म्मेण सत्कर्त्तुमुचितायते । तद्विधाने श्रीमद्देवपादानां प्रभुधर्म्मः प्रमाणम् । किम्बहुनेति ॥८॥

स्वस्ति । प्रबलतरप्रतापार्कनिरस्तरिपुतिमिरसंहारनिरवद्यराजनीति-कल्लोलिनीकर्णधार-मर्य्यादापारावार-संग्रामसीमादुर्व्वारानेकराजचूडालङ्का-रमणिमयूखमञ्जरीपिञ्जरीकृतचरणारविन्द — हृदयदेशनिवेशितगोविन्द-रिपुराजकंसनारायण-भवभक्तिपरायण-महाराजाधिराज - श्रीमदमुकदेवपाद-पद्मेषु समरविजयिषु अमुकस्थानात् सेनापतिश्रीअमुकस्य सिंहासनतलकृत-शिरसः प्रणतिपत्रीयम् । श्रीमद्देवानां प्रतापोदयात् कुशलमत्र । विशेषस्तु—समागतस्वहस्तपत्रं शिरसि निधार्य सम्यक् समधिगतार्थं कुर्व्वन्नस्मि । गोच-रस्तु—श्रीमान् यवनराजः सम्प्रति गौडेश्वरमुद्दिश्य कृतप्रयाणो दिल्लीतश्च-लितोऽस्तीति चारपुरुषेणागत्य कथितमस्ति । गौडेश्वरोऽपि दुर्गप्राकारपरि-ष्कारव्याकुलः सेनासङ्घटनपरायणश्च विद्यते । युद्धं करिष्यति सन्धानं वेति न ज्ञायते । ज्ञात्वा च पश्चाल्लिखिष्यामि । सम्प्रति (यदुचितं) तद्विधातुमादे-ष्टव्यमिति । किं बहुनेति ॥९॥

स्वस्ति । प्रचण्डप्रतापप्रभातिरस्कृतरिपुतिमिरसङ्घातमहामहोत्सवेषु दयादानदाक्षिण्यमर्य्यादाविवेकादिसकलराजगुणालङ्कृतेषु वसुवितरणकथाक-निष्ठीकृतबलिकर्णप्रभृतिवदान्यचक्रेषु वसुन्धराचक्रेषु निजनिखिलविरुदावली-विराजमानमहाराजाधिराजश्रीमदमुकदेवचरणयुगलेषु संङ्ग्रामशतविजयिषु अमुकस्थानात् रौतपति श्रीअमुकस्य सिंहासनतलकृतशिरसः प्रणामशतपत्री-यम् । श्रीमच्चरणानां प्रतापोदयात् कुशलमत्र । विशेषतस्तु समागतस्वहस्त-पत्रं शिरसि निधाय सम्यक् समधिगतार्थं कृतवानस्मि । उज्जटभूमिवासार्थं यदादिष्टं (तत्) श्रीमद्देवरादानां प्रभुधर्म्मं श्रुत्वा विदेशादागत्य लोकाः स्वयमेव वसन्तस्सन्ति । लोकास्तु यत्रैव परिपालं पश्यन्ति, यत्र च प्रभुधर्म्म-स्थेयताञ्च, तत्रैव वसन्ति । तेन देशे वासो वृत्त इति गोचरितम् । ये चात्र प्रत्यूहमाचरन्तो दृष्टास्ते विपक्षाश्चौराश्च मयैव व्यापादितव्याः । देशवासे दुर्व्वृत्तमारणे च मम कौशलमात्रं, प्रतापस्तु श्रीमद्देवपादानामेव क्रिया-साधकः । किं बहुनेति ॥१०॥

स्वस्ति । परमोदित्वरप्रतापार्कसम्पर्कसन्तापितरिपुनृपतिसेनाशोभा-कोटिषु अनवरतवसुदानवशीकृतसकलविद्वज्जनमानसेषु समस्तप्रक्रियाविराज-मानेत्यादिमहाराजाधिराजश्रीअमुकदेवसिंहपादारविन्देषु समरशतविजयिषु राजधानीतः शान्तिकरणिक श्रीमदमुकदत्तानां शुभाशंसनपूर्व्वकविज्ञापन-पत्रीयम् । श्रीमत्प्रतापोदयात् कुशलमत्र । तत्रत्यकुशलं श्रीमद्देवपादानां

चतुरङ्गबलोपेतानां समीहे। गोचरस्तु अत्र च ब्रह्मपुरब्राह्मणाः कृतवरणाः अग्निहौत्रिक श्री (अमुक) आवसथिक श्रीअमुकशुक्ल श्रीअमुकमिश्र श्री-अमुकमहामहोपध्याय श्रीअमुकप्रभृतयो दुर्गापाठमन्त्रजपं नवग्रहहोमञ्च कुर्व्वाणाः चतुर्व्वेदिश्रीमदमुकत्रिपाठी श्रीअमुकद्विवेदी श्रीअमुकप्रभृतयो घनजपं सामगानं संहिता पाठञ्च विदधानास्सन्ति। तेन मच्चरणानां रिपु-जयार्थिनां शुभयात्रादिनादारभ्य स्वस्त्ययनं भद्ररूपेण भवदस्तीति गोचरितम्। वयमाशास्महे यत्सङ्ग्रामं निर्ज्जित्य रिपुनृपतीन्निराकृत्य रिपुधानान्यादाय रिपुराज्यमतिक्रम्य श्रीमद्देवपादानता वयं (?) प्रभुरपि त्वरितमिहागत्य दक्षिणासुवर्णैरिमां द्विजमण्डलीमर्च्चयत्विति ॥११॥

स्वस्ति। सन्धिविग्रहयानासनद्वैधाश्रयतेत्यादिषड्गुणोपपन्नचातुर्य-चतुराननेषु प्रचण्डदण्डनीतिनिराकृतसकलदुर्व्वृत्तप्रभावेषु अक्षयस्थानत्रिवर्ग-संसर्गसावधानमतिषु राजकोषवर्द्धनविवर्त्तनर्नात्तितशेमुषीविभवेषु उक्तिमाधु-र्य्यकार्य्यकर्क्कशतापरामर्षपरिच्छेदपरपक्षविभेदवर्त्तमानकर्त्तव्यता सावधान-समस्तप्रक्रिया - विराजमानमहामहत्तकठक्कुरश्रीअमुकमहानुभावानां चर-णारविन्दयुगलेषु अमुकग्रामात् कार्य्यि-श्रीअमुकस्य भृङ्गायमानशिरसः साष्टाङ्गप्रणतिपत्रीयम्। समागतलिखनार्थः समधिगतः। देशेऽस्मिन् यत्र यत्र राजस्वमासीत् ततस्ततस्समादायास्माभिः श्रीमद्गोचरपूर्व्वकं पात्रे प्रवे-शितम्। यद्यद्दानपत्रमायातं तत्तत्प्रमाणीकृत्य राउत्तपदातिषु दत्तम्। यत्र परिशेषीभूतं क्वापि क्वापि किमप्यस्ति तन्निस्थानमेव मृतपलायितप्रमुखपद-विश्रान्तम्। ततस्तु गोचरप्रहितपत्तामागत्य करिष्यामि। तत्रापि मुद्रासहस्र-द्वयं यत्प्राप्तं तदमुकद्वारा प्रहितमस्ति। यत्र मुद्रा २०००। संवाहवस्तूनि प्रहिताप्तद्वारैव गोचरीभविष्यन्ति। इति ॥१२॥

स्वस्ति। श्रीकरणे परमावेक्षकेषु दण्डनीतिपाण्डित्यमण्डितेषु धर्म-रक्षापूर्वकराजकार्यचातुर्यचाणक्येषु समस्तप्रक्रियाविराजमानमहासामन्ता-धिपतिमहामहत्तकठक्कुरश्रीअमुकमहाशयानां चरणकमलेषु अमुकविषयात् ओसथि श्रीअमुकस्याष्टाङ्गप्रणतिपत्रीयम्। श्रीमत्प्रतापोदयात् कुशलमत्र। विशेषस्तु—अत्र कर्षिणः पूर्व्ववर्षपञ्जीप्रामाण्येन प्रजाभ्यः कपर्द्दकं प्रार्थ-यन्ति। अत्र च कस्मिन्नपि ग्रामे संस्थान मस्ति, कोऽपि ग्रामो निस्थान एव। ततो यद्यस्मिन्वर्षे देशेऽस्मिन भूमिमापनं कृत्वा राजकरो गृह्यते, तदा करकपर्द्दकः सम्पूर्ण एव प्राप्यते, क्षीणानां पीड़ा न भवति। इति तु राजाज्ञां

विनाधिकारी कर्त्तुं न्न शक्नोति। इति सरूपं गोचरितम्। ततो यथा करिष्यामि तथाऽऽदेष्टव्यम्। किं बहुनेति ॥१३॥

स्वस्ति। परमावेक्षकेषु: दण्डभेदसामदानोपायचतुष्टयचातुर्यविशिष्टमतिषु प्रभावोत्साहमन्त्रेतिशक्तित्रयविश्राममहीरुहेषु राज्यरक्षापरामर्षोत्कर्षविधायकेषु सप्रक्रियमहासान्धि-(विग्रहि)-कठक्कुरश्रीअमुकेश्वरमहाशयेषु अमुकग्रामात् सामन्तश्रीअमुकस्याष्टाङ्गप्रणतिपत्रीयम्। शिवमिहान्यच्च मया श्रुतम् राजकोपो मयि विद्यते। यद्यपि प्रकोपनिमित्तं न जानामि तथापि-दुर्ब्बोधं राजचरित्रमिति प्रकोपवार्त्तां श्रुत्वा शङ्काकुलितमानसोऽहं तत्रागन्तुं बिभेमि। ततो यदि निर्णयराजलिखनमेकं स्वकीयलिखनञ्च प्रहीयते, तदा निश्शङ्को भूत्वा सन्निधानमागच्छामि। किं बहुनेति ॥१४॥

स्वस्ति। श्रीकरणे शौर्यधैर्यमर्यादाविवेकविचारपरमोपकारधर्मरक्षापूर्वकराजकार्यकक्कंशतेत्यादिसकलशिष्टगुणालङ्कृतेषु स्वपक्षपरपक्षवार्त्ताज्ञानसमयकर्त्तव्यसमवधानकृत्यसन्देहपरिच्छेदकोषवर्द्धनशक्तिप्रभृतिमन्त्रिमन्त्रणाकुशल— परिपाटिपटुतरव्हापारेत्यादिसत्रक्रियसान्धिविग्रहिकठक्कुरश्रीअमुकेश्वराणाञ्चरणकमलेषु अमुकग्रामात् सेनापतिश्रीअमुकस्याष्टाङ्गप्रणतिपत्रीयम्। श्रीमत्प्रतापोदयात् कुशलमत्र। कार्यञ्च—राउत्तपदातिपरिग्रहाय श्रीमद्देवपादैः श्रीमद्भिर्य्यदहम् प्रहितोस्मि, ततो मया स्वदेशीया विदेशीया नानासङ्ग्रामलब्धयशसो नानाशस्त्रकृताभ्यासाः शूराः कुलीनाः स्वामिभक्ताश्चास्नायिकः सुरुकिचौहानचन्देलप्रभृतयश्चाटुकारेण प्रत्याशादानेन चानुरञ्जिताः सन्ति। एते च श्रीमद्देवपादानां श्रीमहाशयानाञ्च विवेकविचारपरमाप्तजनवात्सल्यञ्चाकर्ण्य तत्रागन्तुमुन्मुखाः कृतास्सन्ति। यद्यमीषां रूपगौरवक्षापूर्व्वकं योग्यजीव्यस्थैर्य्यं भवतिमम सेवकस्य (च) वचनन्न व्यभिचरति, तदेतान्नीत्वा तत्र गच्छामः। एतेषां तत्र गमनेन स्वपक्षोत्कर्षः परपक्षापकर्षश्च सम्भवति। तदत्रावधारणं कर्त्तुमवलोकनीयम्। किं बहुनेति ॥१५॥

स्वस्ति। अमुकनदीतटावस्थितकटके प्रभुषु प्रतापोदयोद्योतितसकलदिङ्मण्डलेषु अनेकराजावलीमौलिकमुकुटमणिप्रभारञ्जितचरणारविन्देषु समस्तेत्यादिश्रीअमुकदेवपादेषु राजधानीतः समस्तप्रक्रियाविराजमानमहासामन्ताधिपतिमहामहत्तकठक्कुरश्रीअमुकशर्म्मणां शुभाशीःपूर्व्वकविनय

विज्ञापनपत्रीयम् । श्रीमत्प्रतापोदयात् कुशलमत्र । तत्रत्यं श्रीमद्देवपादानां गजतुरगरथपदातिचतुरङ्गबलसहितानां कुशलमाशास्महे । कार्य्यञ्च यदा श्रीमद्देवपादैरितः प्रयाणं कृतम्, तदारभ्य समस्तराज्यकार्य्यं श्रीमद्देवपादानां पुण्योपचयात् भद्रक्रमेण चलदस्ति । ये चाधिकारिणः साध्यशेषनिमित्तं ये च सापराधा दण्डशेषनिमित्तं कारागारे बद्धास्सन्ति यावच्छक्ति तैर्द्दत्तमेव । अतःपरं ते परमदुर्गताः प्राप्तयातनाक्लेशाः अपि किमपि दातुन्न शक्नुवन्ति— म्रियन्ते परम् । ततो यदि करुणयादेशप्रसादो वा तदामीषां देयवस्तुनि परिच्छेदः क्रियते । परिच्छिन्ने प्रतिभुवो गृह्यन्ते । शृङ्खलबन्धनादेते विमोच्यन्ते, तदा किञ्चिद्धनप्राप्तिरपि भवति । प्राणिवधवारणञ्च सम्भवतीत्यास्माभिर्गोचरितम् । राजधर्म्मेण यदर्हति, तल्लिखितुमादेष्टव्यम् । संवाहवस्तुनि पत्ताप्रमाण्येन प्रहितपुरुषद्वारा गोचरीभविष्यत्येवेति ।१६।।

स्वस्ति । धर्म्मसन्देहनिर्णायकवाचालवादिप्रबन्धबद्धसाधुजनमोददायकवेदान्तसिद्धान्तशुद्धान्तःकरणकपटपाटवतिमिरभास्करकिरणसप्रक्रिय - महाधर्म्माधिकरणिकठक्कुरश्रीअमुकेश्वरचरणेषु अमुकग्रामात् श्रीअमुकेश्वराणां बहुविनयपूर्व्वकनमस्कारपत्रीयम् । कुशलमत्र कार्यञ्च यद्यपि श्रीमन्तो धर्म्मार्थमेव समदृष्ट्या विचारयन्ति, न द्वेषं न च पक्षपातं धारयन्ति तथाप्यमुकामुकशर्म्माणौ वादिप्रतिवादिनौ गच्छन्तौ तिष्ठतः सिद्धान्तमनयोर्व्विवादं विचार्य्यं जयिने जयपत्रमादेष्टव्यं, किमपरमिति ।।१७।।

स्वस्ति । स्वरवर्णमर्य्यादापरतन्त्रमन्त्रपाठविचक्षणेषु सुविदितगुण्यगुणिलक्षणेषु मखसहितक्रियाकलापपरिपाट्यप्रमादिषु शास्त्रसिद्धान्तवादिषु प्रतिष्ठितपुरोहितमहामहोपाध्यायश्रीअमुकचरणेषु अमुकग्रामात् श्रीअमुकशर्म्मणो विनयशतोपनेत्री नमस्कारपत्रीयम् । श्रीमतां शुभाशंसनात् कुशलमत्र । तत्रत्यकुशलं समीहामहे । कार्यञ्च श्रीमन्तः सम्प्रति राजपुरोहितपदव्यां विराजन्ते । सम्प्रति मम पुत्रावधीतशास्त्रौ प्रज्ञाप्रवीणौ च तत्र राजस्थाने भिक्षार्थं गच्छन्तौ वर्त्तेते । तदनयोर्गुणानाचारान् कुलशीलञ्च परीक्ष्य समुचितभिक्षालाभः कारयितव्यः । तेनास्मदीया पूर्व्वप्रत्यासत्तिः फलवती भवति । किं बहुनेति ।।१८।।

इति श्रीविद्यापतिविरचिता-लिखनावल्यां उच्चैः कक्षपरिपाटिर्न्नामानुक्रमणिका प्रथमः ।।

□

अथाधःकक्ष लिखनानि

स्वस्ति । अमुकपत्तनात् दण्डपाटमुकुटसिंहासनश्वेतातपत्रसितचामरेत्यादिसमस्तप्रक्रियाविराजमाननृपतिमुकुटमाणिक्यकिरणारुणनखमयूखरिपुराजद्विरदपञ्चाननिजकीर्त्तिकौमुदीबोधितकुमुदकाननेत्यादिमहाराजाधिराजश्रीमदमुकसिंहदेवपादाः समरविजयिनः परमावदातचरितान् राजश्रीअमुकान् संवादयन्ति । सम्प्रति यूयं करिष्यमाणक्रियमाणक्रमेण सेवां न कुरुथ, दीयमानक्रमेण करन्न दत्थ नैरपेक्षमाचरथ । किमिदं साम्प्रतमपि यदि स्वहितमिच्छथ, तदा प्रत्यब्ददीयमानकरं श्रीकरणे प्रविष्टं करिष्यथ, सेवार्थं स्वकीयपुत्रं भ्रातरं वा समुचितसैन्यसमेतं प्रहेष्यथ । यद्येवं न कुरुथ, तदा यत्र जीवथ, तत्र यास्यथ । नो चेत्प्रयाणं कृत्वा करितुरगपदातिपदाघातैरेव युष्माकं दुर्गं चूर्णावशेषीकृत्य युष्मान् सुभटकोटिशरव्यापारैरचिरादेव यमपुरं प्रहेष्याम इति ॥१६॥

स्वस्ति । अमुकनदीतटावस्थितकटकात् प्रचण्डप्रतापतपनतापिताशेष वैरिभूपालसारमर्य्यादापारावारनीतिनिष्णातव्यवहारकामिनीकण्ठहाररिपुराजदैत्यनारायणकंसारिचर्चापरायणशरणागतरक्षावज्रपञ्चरसमरसीमावष्टम्भसम्भावनास्पर्द्धितकुञ्जरसमस्तप्रक्रियाविराजमानमहाराजाधिराज श्रीमदमुकदेवपादाः समरविजयिनो राजश्रीअमुकान् संवादयन्ति । (वयं श्रीअमुकदेवपादानां चरणप्रपन्ना एव सेवां कुर्व्वाणाः करन्ददानाः तिष्ठामः तथापि कथमस्माकमुपरि प्रयाणं कृतमस्ति इति यल्लिखितं तत्र भवन्तः श्रीमन्तः) शुद्धेन मनसास्मच्चरणानां सेवां न कुर्व्वन्ति, न स्वविभवानुरूपकरं प्रयच्छन्ति, तेनास्माभिः प्रयाणं कृतमस्ति । साम्प्रतमपि यदि स्वहितमिच्छथ तदा दश हस्तिनः, पञ्चाशल्लक्षाणि धनानि, शतमश्वान् प्रहेष्यथ । तेन स्वयं सुखेन स्थास्यथ । यदि तथा न कुरुथ, तदा वयमागच्छन्त एव तिष्ठामः । यूयं यत्र जीवथ, तत्र गिरिदुर्गाभ्यन्तरे गत्वाश्रयथ, सन्धिष्यथ ॥२०॥

स्वस्ति । धर्माधिकरणात् सप्रक्रियमहाधर्म्माधिकरणिकठक्कुरश्रीअमुकचरणा (राउत्त) राजश्रीअमुकान् समादिशन्ति—अत्र महामहोपाध्यायश्रीदेवदत्तानां गतदासविवादे दासीप्राणिचतुष्टयमसावतिक्रम्य धृतवानतो भोग्यसहितं ददात्वित्यर्थभाषायां भवता मिथ्योत्तरं दत्तम् । मिथ्योत्तरे

पूर्व्ववादिनः प्रत्यर्थिदिशि प्रमाणगवेषणायामर्थिनामुकशर्म्माणौ साक्षिणावुपन्यस्तौ भवता स्वीकृता च । तावादाय साम्प्रतमर्थिव्यवस्थापितदिवसेऽत्रोपस्थित इति मत्वा यूयमत्रागत्य साक्षिनिगदं श्रोष्यथ । यदि नागमिष्यथ, तदाऽर्थापत्तिलभ्य एव युस्माकं पराजयो भविष्यतीति यूयं सत्वरमत्रागमिष्यथेति ॥२१॥

स्वस्ति । श्रीकरणात् समस्तप्रक्रियाविराजमानमहासामन्ताधिपतिमहामत्तकठक्कुरश्रीअमुकेश्वरमहानुभावचरणाः चातुर्द्धरिकश्रीअमुकान् संवादयन्ति । अस्मिन् राज्ये सर्व्वैरधिकारिभिः स्वस्वदेशस्य करधनं निश्शेषीकृत्य प्रहितम् । युष्माकं देशे बहुतरं साध्यशेषधनं विद्यते, तद्धनं कथन्न प्रस्थाप्यथ, कार्य्यपुरुषाणां कार्य्यंचातुर्य्यंफलं धनमस्ति, यदि धनन्न याति तदा कुताश्चातुर्य्यं कुत आपृत्वं (आप्तत्वम् ?) वा यदि वा सकलं धनं तद्देशीयं युष्माभिः करणे पौत्रकपत्रीभ्यां प्रवेशितमेव विशेषो नास्ति तदा पञ्जीमादाय लेखमागत्य करिष्यथेति ॥२२॥

अमुकराजधानीतः समस्तप्रक्रियाविराजमानमहासामन्ताधिपतिमहामहत्तकठक्कुरश्रीअमुकचरणाः लेखिश्रीअमुकान् संवादयन्ति - अमुकपरिगणायाः साध्यशेषजिज्ञासार्थं यूयं गताः तत्राद्यपर्य्यन्तं किं कृतमस्तीति लिखित्वा प्रहेष्यथ चातुर्द्धरिकस्य गृहीतं भक्षितमुपेक्षितं पञ्जिकारस्य प्रमादनष्टं देशसाधितप्रामाण्येन राजस्वं वर्त्तुलीकृत्य राशिर्ज्ञातव्यः । ततस्तां पञ्जिकां नियोगिपाञ्जिकौ च नीत्वाऽत्रैवागन्तव्यम्, तेनात्र करण एव स्वदेशपञ्जिकाराशौ साध्यशेषजिज्ञासां कृत्वा ग्राह्यग्रहणं क्रियत इति ॥२३॥

स्वस्ति । समस्तप्रक्रियाविराजमानमहामत्तकठक्कुरश्रीअमुकमहाशयाः चाढ़श्रीअमुकं समादिशन्ति । समागतपत्रिकार्थस्समागतः । त्वया निरपराधानां साधूनां वर्त्मनि सञ्चरतां धनानि प्राणाश्च हृताः तदा त्वयि श्रीमद्देवपादाः प्रकुप्ताः । स्वभावात् दस्युद्वेषिण एव राजानः । श्रुतञ्च मया तेन भयेन वने वने बहुतरदिनादारभ्य तिष्ठसि, तव ग्रामे उज्जटो विद्यते इत्यादिकरुणयाऽस्माभिः श्रीमद्देवपादेषु सदवसरे निवेदितं ततस्सदवसरगुणेनास्माकं प्रयत्नेन स्वकीयदाक्षिण्येन श्रीमद्देवपादैः पूर्वापराधस्तव क्षान्तः तथा राजलिखनं गच्छदेवास्ति । यदप्यग्रेऽपि कुवृत्तिन्निवृत्ति कर्त्तुं पारयसि तदा तद्राजलिखनं शिरसि कृत्वा लोकान् वासयित्वा परिवारान् ग्रामे धृत्वा त्वमत्रागमिष्यसीति ॥२४॥

स्वस्ति। (श्री)करणात् समस्तप्रक्रियाविराजमानमहामहत्तकठक्कुर-श्री अमुकमहाशयाः स्थानास्थानकश्रीअमुकान् संवादयन्ति। अत्र श्रुतं पुरपतिगृहे येन चौरेण चोरिका कृता चोरिवस्तुसमेतस्तत्रास्ति यद्येवं तदा तच्चौरं शृङ्खलैः संयम्य तद्वस्तुसमेतमत्र प्रहेष्यथ अन्यथा त्वन्न करिष्यथेति ॥२५॥

स्वस्ति। श्रीकरणात् सप्रक्रियमहासान्धिविग्रहिकठक्कुरश्रीअमुक-महाशयाः स्थानान्तरिकश्रीअमुकान् समादिशन्ति। समागतलिखनार्थः समाधिगत एव विपक्षराज्यदुर्गात् राउत्तपदातिसहिताः सेनापतिश्रीअमुक-परमयोग्याः समागत्य मिलिताः सन्तीति युष्माभिर्लिलिखितं तदनुरूपं तेषु समं समाश्वासं वासस्थानं योग्यभोग्यराजं दास्यथ, ततः स्वकीयसमाजेन तानत्र नेष्यथ। ततोऽत्र श्रीमद्देवपादाः समीचीनैर्व्वासोभिर्भूषणैस्तुरङ्गैश्च तानर्च्चयिष्यन्ति तेषां त्वत्समाजसमागतानां योग्यं जीव्यं करिष्यन्ति, दिव्यानुरूपांश्च ग्रामान् दास्यन्ति, अस्मिन्नर्थे राजादेशपत्रं गच्छदेवास्ति तत्पत्रं शिरसि निधाय परमसौमनस्येनानुगमिष्यथेति ॥२६॥

श्रीअमुकराजधानीतः प्रचण्डकलितकोदण्डश्रेणीखण्डखण्डीकृतविपुल-सेनासुभटशिरश्शोणिततरङ्गिणीततरङ्गसङ्गमसञ्जातप्रतापार्क्कसम्पर्क्कपरिम्ला-नीकृतसकलरिपुकुलकैरवकाननरिपुकरिघटाविघटनपञ्चाननविविधवसुदान-कथासमाहूतदुःखिजनदारिद्र्यमुद्राभञ्जनकृतसकलजनमनोरञ्जनेत्यादिस-मस्तप्रक्रियाविराजमानश्रीअमुकदेवपादाः समरविजयिनः अमुकपरिगणायां अमुकग्रामवास्तव्यसकलप्रजालोकान् समादिशन्ति। बिदितमस्तु भवतां ग्रामोऽयमस्माभिर्म्महामहोपाध्यायश्रीअमुकेभ्यश्चन्द्रार्कावधिना देवादिभूमि-व्यतिरिक्तः समुत्सृज्य ब्रह्मोत्तरत्वेन दत्तः। यत्र अमुकग्रामव्यवस्था ब्रह्मोत्तरम्।

सर्वेषामेव दानानामेकजन्मार्थगं फलम्।
क्षितिहाटकगौरीणां सप्तजन्मानुगं फलम् ॥१॥
भूमिं यः प्रतिगृह्णाति यश्च भूमिं प्रयच्छति।
तावुभौ पुण्यकर्माणौ नियतं स्वर्ग्गगामिनौ ॥२॥
स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेश्च वसुन्धराम्।
स विष्ठायां कृमिर्भूत्वा पच्यते पितृभिः सह ॥३॥

इत्यादि वाक्यानुसारादत्र स्थैर्य्यं बुद्ध्वाऽमीषां वचसा वासचासौ करिष्यथ देयद्रव्यादिकश्च दास्यथेति ॥२७॥

स्वस्ति । अमुकराजधानीतो दानशौर्य्ययशःप्रतापमर्य्यादाविवेकादिनानाधर्म्मतुलिताखण्डलशरदिन्दुप्रसन्नमुखमण्डलानुगतजनविहगविश्रामकाननपरिपन्थिगजघटाविघट्टनपञ्चाननसमस्तप्रक्रियाविराजमानमहाराजाधिराजश्रीअमुकदेवपादाः समरविजयिनः चातुर्द्धरिकश्रीअमुकान् संवादयन्ति। महामहोपाध्यायश्रीअमुकेभ्यो यो ग्रामोऽस्माभिर्ब्रह्मोत्तरत्वेन प्रदत्तोऽस्तीति तथा राउतश्रीअमुकस्य यश्च ग्रामः शासनीकृत्य दत्तोऽस्तीति तयोर्ग्रामियोश्चतुस्सीमावच्छिन्नभूमौ वनजलकरादौ शासनपट्टकानुसारेण यूयं गत्वा प्रवृत्तिमनयोः कारयिष्यथेति ॥२८॥

श्रीकरणात् समस्तप्रक्रियाविराजमानमहासामन्ताधिपतिमहामहत्तकठक्कुरश्रीअमुकमहाशयाः साधुलोकान् वाणिज्योपजीविनः सर्व्वान् संवादयन्ति। अस्मिन् वर्षेऽशीतिसहस्राधिकलक्षद्वयेनामुकदेशस्य वाणिज्यदानं नियम्य क्षत्रियसट्ठक्कुरश्रीअमुकेषु समर्प्पितम्। यत्र वाणिज्यविषयदानदेयं २,८०,००० तदनयोर्व्यवस्थया क्रयविक्रयौ यातायातञ्च करिष्यथ। मूलषोडशभागञ्च करञ्च दास्यथ ॥२९॥

स्वस्ति। श्रीकरणात् समस्तप्रक्रियाविराजमानेत्यादिमहामहत्तकठक्कुरश्रीअमुकचरणाः हट्टोपजीविनो घटोपजीविनश्च संवादयन्ति। मतमस्तु भवतामस्मिन् वर्षे सर्व्वे हट्टा घट्टाश्च वणिक्साधुश्रीअमुकस्य सहस्रदशतयं नियम्य समर्प्पिताः। यत्र देय १०,००० तदमीषां व्यवस्थया क्रयविक्रयौ करिष्यथेति नदीवारावारञ्च करिष्यथ उचितराजकरञ्च दास्यथ ॥३०॥

श्रीअमुकनगरात् चातुर्द्धरिककार्य्यिश्रीअमुकमहाशयाः गोण्ढधीवरप्रभृतिवर्ग्गान् मत्स्यकच्छपव्यापादकान् समादिशन्ति। विदितमस्तु भवतां नदीनदपल्वलपुष्पकरिण्यादिजलाशयाः साहनिश्रीअमुकेषु सहस्रमेकं नियम्य प्रदत्ताः। यत्र नदीनदपल्वलप्रभृतिसकलजलाशयदेय १,०००। तदेषां व्यवस्थया जलचरवधं करिष्यथ। प्रतिवाटि(रि)कां प्रतिजलं यथाव्यवस्थितं करं दास्थेति ॥३१॥

बलकरणात् सप्रक्रियबलकरणिकठक्कुरश्रीअमुकमहाशयाः स्थानाध्यक्षेश्वरश्रीअमुकान् समादिशन्ति। युष्माकं स्थाने के के राउत्तपदातय-

श्चोपस्थितास्सन्ति नियुक्तीकृतानां मध्ये के न सन्ति तदुभयं लिखित्वा प्रहेष्यथ। तत्र द्विसीम्नि विपक्षशङ्काकुलस्थानके ये ये नियुक्ता राज्यजीव्यभुजः ते ते तत्र चेन्न सन्ति, तदा तेभ्यो राज्यजीव्यं परावृत्य ग्रहीष्यथ। किञ्चद्द्विगुणीकृत्य ग्रहीष्यथेति ॥३२॥

श्रीअमुककरणात् समस्तेत्यादिमहामत्तकठक्कुरश्रीअमुकमहाशयानां कार्य्यिश्रीअमुकेषु पत्रीयम्। चौहानराउत्तश्रीअमुकेषु पुराणसहस्रपञ्चतयंजीव्याभरणे विलब्धं (विलभध्वं), यत्र विलब्धं (विलभध्वं) ५,००० तदेषा पत्रीमादायामुकबर्षस्य देयं दास्यथ अथवा राजादेशात् दण्डितापराधदण्डसम्बन्धिधनं दास्यथेति ॥३३॥

अमुकग्रामात् महत्तमश्रीअमुकानां कर्मान्तिकश्रीअमुकेषु पत्रीयम्। कार्यञ्च य(क)स्मिन् कर्मान्ते त्वया किं धान्यमुप्तं उप्ते कियति केरलीकं करणभूतमस्ति तदस्मासु विलिख्यथ। खिलभूमौ[1] कियता धनोपक्षयेन कियत्क्षेत्रं सिद्धं कृतमित्यपि लिखनीयम्। अग्रेरोपणनिमित्तं गढवारमगहीप्रभृतिश्लक्षणधान्यबीजं पातयिष्यथ। क्षेत्रञ्च साधयित्वा कुद्दालैः सिद्धं करिष्यथ। वेतनं यदि बहिर्न्नं विद्यते तदा विद्यत एव नो चेद्वेतननिमित्तम-

---

१. Sir Monior Williams, A Sanskrit English Dictonary, पृ० ३४०; अथर्ववेद, ७·११५; विवादचन्द्र, पृ० ६५·६६। यत्र स्वामिनोऽशक्त्या दूरदेशस्थत्वादिना वा खिलोक्षेत्रमन्यः कर्षति तदा तत्फलं लभते एव।

अशक्तप्रेतनष्टेषु　　क्षेत्रिकेष्वनिवारितः।
क्षेत्रं चेद्विकृषेत् कश्चित् स तु तत्फलमश्नुते ॥१॥

इति वचनात् नष्टो व्यवहितदेशस्थः प्रेतो देशान्तरगतः, यदि क्षेत्रिकसन्निहितेन निवार्यते तदा नैवम्। यद्यन्तरागता क्षेत्रं जिघृक्षति तदा प्रहृतीकरणव्य दत्वा क्षेत्रमाप्नोति।

विकृष्यमाणक्षेत्रेषु क्षेत्रिकः पुनराव्रजेत्।
खिलोपचारं तत्सर्वं दत्वा क्षेत्रमवाप्नुयात् ॥२॥

इति वचनात्, खिलोपचारं खिलकर्त्तनव्यम्, यदि खिलोपचारं न ददाति क्षेत्रं च कष्टसाध्यं तदा तदुत्पन्नस्याष्टमं भागं ददानः सप्तसंवत्सरान् भुक्त्वा अष्टमवर्षे क्षेत्रपतेः कृते दद्यात्। अतिकष्टसाध्यं त्वष्टमवर्षेऽपि तथा भुक्त्वा दद्यात्।

स्मास्वत्र लिखिष्यथ तेनास्मात् प्रहीयते। वृषभपोषणं तथा वृषशालायां मशकोपद्रवः कर्दमोपद्रवश्च न भवति, तथा यत्नतः करिष्यथेति ॥३४॥

अमुकग्रामात् श्रीअमुकसिंहानां परमकल्याणभाजनेषु कल्याणिश्री-अमुकेषुशुभाशीःपत्रीयम्। कुशलमत्र। अन्यश्च—अत्र नित्यव्ययप्रयुक्तिर्नास्तीति राजगोचरं कृत्वा स्वकीयजीव्यं प्रार्थनीयम्। श्रीमदादेशेनैव-श्रीठक्कुराणां परितोषं विधाय पतितजीवसंख्याः श्रीमद्देवचरणेषु बोधयितव्याः सेना च महती कर्त्तव्या, तेन क्षान्तिरक्षापूर्वकं स्वीकीयजीव्यं प्राप्यते। अस्माकमपरे पुत्राश्च सन्ति तथापि परिवारपोषणप्रत्याशापात्राणि कुलाम्नायरक्षणक्षमाः श्रीमन्त एव शतवर्षं विराजन्तामित। किम्बहुनेति ॥३५॥

अमुकग्रामात् ठक्कुरराज्ञीअमुकदेवीनां परमाभङ्गुरमङ्गलासु कल्याणिनीश्रीअमुकदेवीषु शुभाशीःपत्रीयम्। कुशलमत्र। तत्रत्यकुशलं समीहामहे। कार्यञ्च ननन्दुरपरितोषेण सपत्नीकलहेन च श्रीमतीनां महती कुश्लेषवार्त्ता श्रूयते। तेनोद्वेगो मनसि विद्यते। यद्यपि दुहिता सन्ततिः पित्रोरुद्वेगनिमित्तमेवास्ति तथापि भवतीनां शीलैकधनानां सकलगृहकार्य-कुशलानां गुरुभक्तिपरायणानां बहुविधासमञ्जसकथां श्रोतुन्न शक्यते। यद्यपि ननन्दा दुश्शीला सपत्नी द्वेषिणी विरुद्धमाचेष्टते तथापि मौखर्यं विनिवार्य भवतीभिः शीलालम्बनमेव विधातव्यम्। वस्तुतस्तु प्रणतिसुरसा लोकद्वयोपकारिणी सौभाग्यसम्पत्करी स्वामिभक्तिः प्रतिक्षणमिङ्गिताज्ञा-नुसारिणी सर्वात्मना कर्त्तव्या। वैदेश्याद्यदितः खोजकरणार्थं मानुषो न गच्छति तदनुचितं क्षन्तव्यम्। सम्प्रति सन्देशत्वेन स्थूलपूगश्लक्षणवराटिका-सिन्दूरसुगन्धितैलकुसुम्भ-रक्तवस्त्राणि परिगृहीतव्यानि। वर्षाकालावसाने भवदीयो भ्राता भवदानयनार्थं गमिष्यत्येवेति ॥३६॥

अमुकनगरात् लेखि-श्रीठक्कुराणां परमकल्याणभाजनेषु प्राणाधिक-स्नेहापात्रेषु सत्पुत्रश्रीअमुकेषु शिरश्चुम्बनपूर्वकशुभाशंसनपत्रीयम्। कुशलमत्र। स्वकीयकुशलवार्त्तया वयं सततमानन्दभाजनं विधेयाः। वयमत्र राजस्थाने अधिकारमनुतिष्ठन्तो वर्त्तामहे। तदत्र चिन्ता कापि न कर्त्तव्या। अस्माकं कायस्थानां राजकार्यं कुर्वतां कदाचित्प्रभवः कुप्यन्ति, कदाचित्प्रसीदन्ति ततस्तत्कोपप्रसादवार्त्तया वैरोत्साहौ न कर्त्तव्यौ। उभयत्र सन्तोषमालम्ब्य स्वगृहे कार्याणि कर्त्तव्यानि विद्या चाभ्यसनीया। धनोपा-

र्जनं कुलोपार्जनं महदस्तीति मनस्येदमङ्गीकृत्य चाहर्निशं गुणभ्यासे हृदयं दातव्यमस्ति ॥३७॥

स्वस्ति। अमुकपत्तानात् महामहोपाध्यायश्रीअमुककेश्वरणां परममान्येषु परमस्नेहसिन्धुषु तपश्शीलकुलाचारचातुरीचारुचारित्रेषु जामातृश्रीमन्मिश्रश्रीअमुकमहाशयेषु बहुतरविनयविज्ञापनपूर्वकचतुर्वेदोक्तशुभाशंसनपत्रीयम्। कुशलमत्रेति सन्तोषः कर्त्तव्यः। स्वकीयकुशलवार्त्तामृतधाराभिस्सततं वयमभिषिञ्चनीयाः। कार्यञ्च यः श्रीमहाशयैरुपन्यस्तस्तस्मिन् वरे परेषामपि परमाशैँरत्र स्थैर्यं कृतम्। ततो दशमदिने शुभलग्नेऽस्माकं कन्याविवाहो भविष्यति। महाशयैः सकलत्रैरत्रागत्य स्वकीयाभिमुख्ये मङ्गलकार्यमिदं कारयितव्म्। तेन सर्वं सुभोमनं (सुशोभनं) भवतीति निवेदितम्। तेनेदं श्रीमन्तो जामातरः परममान्याः। स्वेनात्र कार्यसङ्कोचमङ्गीकृत्य कल्याणिश्रीअमुकः श्रीमान् तामानयनार्थं प्रहितोऽस्ति। स्वकीयभगिन्यानयनार्थमयमेव भवत्पितृचरणेषु चानुनयं करिष्यति। समयसङ्कीर्णो विलम्बन्न सहते तत्त्वरयात्र विजयः कर्त्तव्य इति ॥३८॥

स्वस्ति। श्रीकरणात् सुप्रतिष्ठमहापट्टनिकठक्कुरश्रीअमुकदासमहाशयानां पञ्जिकश्रीअमुकेषु पत्रीयम्। कार्यञ्च युष्माभिः करणे साध्यशेषपञ्जी या पूर्ववर्षे दत्ता लेखायां दीयमानायां तयोः संवादो नास्ति न वा निबन्धसंवादो विद्यत इति श्रुत्वा यावन्महामत्तकठक्कुर श्रीअमुकचरणैः प्रकोपो न क्रियते तावदेवागत्य पञ्जीसुश्लेषं करिष्यथ नो चेत्पञ्जीविसंवादेन दुश्शतपराभवभाजनं भविष्यथेति ॥३९॥

स्वस्ति। सरस्वतीखण्डात् सप्रक्रियमहासूपकारपतिश्रीअमुकमहाशयाः सूपकारान् संवादयन्ति—अस्माकमिदानीं कन्याविवाहव्यावृत्तिरस्ति। तेन वयं श्रीमद्देवपादानामाज्ञामादाय गृहङ्गच्छन्तो वर्त्तामहे। सूपकारेषु मध्ये भवन्तः प्रवीणज्ञानाः पाककुशलाः द्रव्यसंयोगपरिमाणविज्ञानं (जानन्ति) ततो यावदस्माभिः समागम्यते तावद्राजस्वसारं प्रत्यस्मत्प्रतिनिधित्वेन यूयं करिष्यथेति ॥४०॥

स्वस्ति। पर्णशालातः सप्रक्रियमहापर्णागारिकठक्कुरश्रीअमुकमहाशयाः स्वस्त्रागारिकश्रीअमुकान् संवादयन्ति। अत्र राजस्वस्त्रागारे ताम्बूले निःकार्याः कृताश्चतुस्समरूपकतया सितासितदूषिताश्च अकारि। श्वेतञ्च

पर्णं मृग्यते तेन यूयं पर्णकनिमित्तं प्रहिताः। सम्प्रति मासं व्याप्य तत्रैव तिष्ठथ। अत्र राजस्वसृयोग्यपणं नास्तीति मत्वा श्वेतपर्णं नीत्वा सत्वरमत्रागमिष्यथ।। सहस्रटङ्कानां भीमसेनकपूंरमपि नीत्वा नेष्यथ। नागरखण्डपर्णसिन्दूरपूगयोरनुसन्धानं कर्त्तव्यम्। यदा मिलति, तदा समानेतव्यमिति ॥४१॥

स्वस्ति। पनीयशालातः सप्रक्रियपानीयागारिकठक्कुरश्रीअमुकमहाशयाः कुम्भकारश्रीअमुकान् संवादयन्ति—कार्यञ्च अत्र पनीयशाला बहवः समीचीना न विद्यन्ते। तेन दिवा आतपं (पं) भीजयित्वा रात्रौ शिशिरे धृत्वा, जलार्द्रवाससा प्राच्छाद्य तालव्यजनेन पनीयं शीतलं कर्त्तुंन्न पार्य्यंते। बहुतरकलशसाध्यमेतदिति परिज्ञाय महतोमहतः कलशास्त्रिम्माय नीत्वा सत्वरं तत्रगमिष्यसि। श्रूयते वानिज्यव्यवसायिनः समागतास्सन्ति। तदोऽगुरुगुग्गुलसिद्दलकप्रभृति धूपद्रव्याणि प्रहितटक्कैरेकैकं क्रीत्वा सत्वरमत्रागमिष्यसि। पाटलावासितमुसी(शी)रवारि घटे घटे कृत्वा धारयिष्यसि। किं बहुनेति ॥४२॥

स्वस्ति राजधानीतः सप्रक्रियमहावार्त्तिकनैबन्धिकठक्कुर श्रीअमुकमहाशयाः वार्त्तिकश्रीअमुकं संवादयन्ति—अमुकेन राज्योद्यमवार्त्ताज्ञानार्थं प्रहितोऽसि। श्रूयतेऽत्र गृह एव तिष्ठसि। यद्येवं (तदा) लिखनसन्दशनादेव सत्वरं यत्र प्रहितोऽसि, तत्र गमिष्यसि। यदि गृहसुखलोभेन गृहे दिनमात्रं विलम्बं करिष्यसि, ततो राजशास्तिभाजनं भविष्यसि। राजजीव्यभुजां सेवकानां कुतो गृहसुखमिति? यद्येकवासरे वार्त्ता न प्राप्तव्या, तदा वार्त्तिकपुरुषस्य को गुण इति ॥४३॥

स्वस्ति। अमुककरणात् सप्रक्रियमहादेशनैबन्धिकठक्कुरश्रीअमुकमहाशयाः प्रतिनिधिपान् अमुकान् संवादयन्ति। यूयं कतिपयदिनकटेन गृहङ्गताः तत्रैव तिष्ठथ। ततो ज्ञायते राजशासनं विस्मृतं युष्माभिः। साम्प्रतमाषाढीसन्निधाने राउत्तपदातीनां बहुनिबन्धपञ्जीरहस्यविदो भवन्तः। तेनात्र भवदुपस्थितौ निबन्ध विरुद्धं कार्यंन्न भवतीति ॥४४॥

स्वस्ति। राजदेवार्च्चनगृहात् सप्रक्रियमहादेवागारिकठक्कुरश्रीअमुकेश्वरमहाशयाः पुष्पभट्टश्रीअमुकान् संवादयन्ति—यूयं स्वकार्य्यमुद्दिश्य गृहङ्ताः तत्रैव तिष्ठथ। अत्र देवार्च्चनकाले पुष्पेष्वनवधानं दृष्ट्वा श्रीमद्दे-

नपादानां चेतसि प्रकोपोऽनुमितः । तत्र ये ये वटवो मालाकाराश्च नोपस्थितास्सन्ति तान्नीत्वा सत्वरमागमिष्यथेति । तेन (ना) पर्युंषितानि केशकीटापविद्धविवर्ज्जितानि निश्छिद्राणि प्रहितानि ग्रथितानि पुष्पपत्राणि राजदेवार्च्चने सम्भवन्ति ॥४५॥

स्वस्ति । कोषागारात् सप्रक्रियमहाभण्डागारिकठक्कुरश्रीअमुकेश्वरमहाशयाः मुद्राहस्तकश्रीअमुकान् संवादयन्ति—यदा भवन्तो राजप्रस्थापिताः किमपि कार्यमुद्दिश्य तत्र प्रचलितास्तत्रैव मुद्रान्नीत्वा गताः । तत्र (न्न) भद्रं कृतम् । तया मुद्रया विना भाण्डागारे द्रव्यधारणे ग्रन्थिपातेन व्यवहारोऽस्तीति प्रतिज्ञाय स्वकीयप्रतिनिधिद्वारा मुद्रां सत्त्वरमत्र प्रहिष्यथेति ॥४६॥

इति श्रीविद्यापतिविरचितायां लिखनावल्यां अथः (धः) कक्षलिखनपरिपाटीनाम्नी द्वितीयग्रन्थना ॥

□

अथ समकक्षलिखनानि

स्वस्ति यशःकर्प्पूरपरागपूरिताशेषदिङ्मण्डलाखिलधरणिवलयेषु इष्टापूर्त्तमण्डिताशेषमेदिनीचक्रेषुसत्यव्रतपालनयुधिष्ठरेषु समस्तप्रक्रियाविराजमानमहाराजश्रीअमुकदेवसिंहेषुसङ्ग्रामशतविजयिषु अमुकग्रामात् श्रीअमुकराजस्य प्रेमपत्रीयम् । कुशलमत्र, स्वेषाञ्च सवाहिनीपरिवाराणां कुशलोदन्तेन वयमानन्दनीयाः । विज्ञापनञ्च अवयोर्म्मैत्री पूर्वस्माद्दिवसानुवर्त्तमाना तथैव विद्यते, यथास्मदीये कोषे जनपदे अन्येषु च श्रीमतामायत्तिरस्ति । तत्र श्रीमतां विदितं यवनेश्वरप्रहिता सेना भवद्भूमिं पराभवितुं निकटमागतस्ति । ततो यदस्माकमायत्तं श्रीमतामनुकूलं तदर्थस्मासु लिखनीयम् । सतां मैत्रीप्रस्तावे प्रयोजिकैव भवति । यदि यवनेश्वरेण समं सन्धिर्विधीयते, तदा वयं धनमौपायनवस्तूनि प्रस्थापयामः । यदा युद्धमारभ्यते, तदा सेनां प्रस्थापयामः । स्वयञ्च निकटमागत्य यदर्हति तत्कुर्म्मः । किं बहुनेति । बहिर्न्नामलिखनम् ।।४७।।

स्वस्ति । सन्धिविग्रहसामदानप्रस्तावोचितसकलोपायवार्त्तया पवित्राचार्य्येषु सहजविकस्वरकेतकीकुसुमकेसरकलापकमनीयकीर्त्तिषु सप्रक्रियमहासान्धिविग्रहिकठक्कुरश्रीअमुकेश्वरमहाशयेषु परमप्रेमरमणीयकुशलपत्रीयम् । विशेषतोऽपि कुशलमत्रेति स्वकीये मनसि सन्तोषः पोषणीयः । तत्र (त्य) कल्याणोदन्तशतकैः सततं वयमानन्दनीयाः । पुरा भवदीयभूपानां प्रेमार्थिना माचरितं दृष्ट्वाऽस्माभिः स्वकीयप्रभुभिः प्रेमाचरितम् । एते राजाना महेच्छामहात्मानो यद्वृत्तं, तत्कृतवन्तः परिपालयन्तश्च सन्ति । तेनोभयभूमिसीम्नि प्रान्ते लोकाः कृषिं कुर्व्वाणाः वसन्तस्सन्ति—निश्शङ्कं स्वपन्ति निराकुलाः तिष्ठन्ति । सम्प्रति भवदीयानां राज्ञां परिजनव्यापारेण क्वापि क्वापि कौटिल्यं स्फुटीभवति । तच्च कौटिल्यं यद्यत्र प्रभुभिर्ज्ञातव्यं, तदाऽमी राजानो नानुचितं सहिष्णवः कोपं करिष्यन्तीति । प्रवृद्धः सः कोपानलः केन निर्व्वापयितव्यः ? तस्मिन् राज्ये भवन्त एव मन्त्रिणो वयं यस्मिन् राज्ये राजसन्निधानवर्त्तिनो भवामः । तदावयोः प्रेमकारितं यदि व्यभिचरति, तदावयोरेव लाघवम् । राजानः सहजस्वतन्त्राश्च, यदिच्छन्ति स्वयं तत्कुर्व्वन्ति । दूषणन्तु मन्त्रिण एव लोकैरवगम्यते इति प्रतिज्ञायामी

मनुष्या नादत्तव्याः, द्वेषिणः समुद्धरणीयाः, भूमिर्न्नातिक्रमणीया। एभिस्समं यदुच्यते तत्कृतिभिः सम्प्रति वक्तव्यम्। तेन चिरजीवा चिरतरा प्रीतिर्भवतीति। बहिर्न्नाम लिखनम् ॥४८॥

स्वस्ति। परममान्येषु परमसौजन्यसिन्धुषु आचारचरित्रपवित्रोभयवंशभगीरथेषु सदुपाध्यायश्रीअमुकशर्म्ममहाशयेषु अमुकग्रामात् परमप्रेमाभिरामविनयविज्ञापनपत्रीयम्। कुशलमत्र। तत्रत्यकुशलेन वयमानन्दनीयाः। कार्यञ्चश्रीमन्तः श्रोत्रियाः कुलीनाः सर्व्वविद्यापारगाः सदाचारनिष्ठाः। तेन स्वीयोत्कर्षमभीप्सुभिरस्माभिः श्रीमद्भिः सममयमपत्यसम्बन्धः कृतः। प्रत्युत या पुत्री भवत्पुत्राय प्रतिपादिता, तस्याः परमदुर्गतिकथा काऽपि पिहितैवास्तु। भवन्तः ख्यापयन्ति यत् तेन सम्बन्धेनास्माकं स्वजनवैराग्यमभूदिति। कथमिदमर्थशून्यं वचनमभिधीयते? किञ्च विपरीतमस्ति। स्वकीयमहत्त्वं प्रत्याकलनीयम्। किमपरं मान्येषु विज्ञेषु विज्ञापनीयम्? बहिर्न्नामलिखनम् ॥४९॥

स्वस्ति। अमुकग्रामात् कुन्दावदातकीर्त्तिषु सुप्रतिष्ठसाधुश्रीअमुकमहाशयेषु श्रीअमुकस्य प्रेमपत्रीयम्। श्रीमतां कुशलमत्र। कार्य्यञ्च – वयं सिद्धमनोरथाः समुद्रपारादायातः। बहित्रञ्च वस्तुपूर्णं मणिपूर्णमविघ्नेनायतमित्युत्साहः कर्त्तव्यः। अपरञ्च – श्रीतमां कुलशीलं कृतज्ञतामहत्त्वञ्च दृष्ट्वाऽस्माभिर्म्मैत्री कृता। श्रीमतां कृतसंवादिना व्यवहारेण दिने दिने सा प्रतिपञ्चन्द्रलेखेव परमोत्कर्षकाष्ठां प्राप्ता। मैत्रीफलं द्वितीयं प्राणाधीनं बालाधीनञ्च। अस्मत्प्राणाधीनं कार्य्यं कदा श्रीमहाशयानां भविष्यति, कदा वा अस्माभिर्न्निर्वाहनीयमिति परमेश्वरो जानाति। धनाधीननिर्व्वाहे सदाऽमद्वस्तुग्रहणे श्रीमन्त उदासीना दृश्यन्ते। (नै) तन्मैत्रीफलम्। सम्प्रति वयं वणिजो वाणिज्यार्थं देशान्तरङ्गताः। तत्र मुक्ताफलचतुष्टयमुत्तममाप्तम्। तद्रत्नं भवद्योग्यं विद्यते। तेनास्माभिः प्रहितमस्ति तद्ग्रहणे सङ्कोचो न कर्त्तव्यः। सङ्कोचः परवस्तुग्रहणे क्रियते। मैत्री चेत्परभावः कुतः? यद्यपि सतां मैत्री करणनिरपेक्षैव भवति, तथापि उचितपूजाभिरलङ्कृता शोभते। यत्र सन्देशत्वेन प्रहितान्यामलकीफलपरिमाणवत्तुंलद्युतिमन्ति मुक्ताफलानि। यत्र मुक्ताफल ४। अपरञ्च पत्रचिह्नार्थं प्रहित पट्टवस्त्रखण्ड १४, कर्प्पासवस्त्रखण्ड २०, रजतभाजन ४, सुवर्णभाजन १, कर्प्पूर पल १०, चन्दन सवचोन पल १,०००। किं बहुनेति। बहिर्न्नामलिखनम् ॥५०॥

स्वस्ति। परमावदातचरितेषु परमपवित्रकीर्त्तिकेतकीकुसुमसौरभवासितवसुधातलेषु सुध्किवरकुमारश्रीअमुकसिंहेषु अमुकग्रामात् निसर्गसौहृदसुधाधारिशुद्धप्रेमपत्रीयम्। कुशलमत्र। तत्रत्यकुशलं समीहामहे। कार्य्यञ्च—श्रीमद्भिः श्रीमद्देवपादैः समं मौखर्य्यं कृतं तन्न भद्रं कृतम्। यद्यपि मन्तः अम्नायिकाः सर्व्वदापि राजसम्मानपात्राणि बहुतरसङ्ग्रामे लब्धयशसः पराभवन्न सहन्ते, तथात्यमी राजानः प्रभवः, किमप्यमीषां सर्व्वदैवोर्जित्यं (?) रक्षणीयं भवति। समस्पर्द्धया वाग्युद्धं नोचितम्। दिवसदूषणेन भूत्वा पतितं वचनानुवचनेन दुर्व्विचिन्ततं—तदा रोषेण स्थानत्यागः कथं कृतः। प्रभवो यदा धनैस्तुष्यन्ति, भूषणादिभिः पूजयन्ति, तदा प्रभवः, यदि वा कदाचित्कुष्यन्ति, तदा किंप्रभवः। कुलीनानां नेयं मर्य्यादा। साम्प्रतमपि रोषेण भवन्तो नगराद्बहिर्गताः। यत्र स्थीयते तत्रैव स्थातव्यम् यवद्वयमागच्छामः। श्रीमद्देवपादा अपि लज्जिताः सन्ति। श्रीमन्तोऽप्यनुनयार्थमागमिष्यन्ति। क्वापि न गन्तव्यमिति निश्चितम् गन्तव्यं तदाऽऽवाभ्यां सहैव गन्तव्यम्। अवयोरेकत्र सहवासो विद्याभ्यासः साहित्यमेवं प्रभुसेवा सङ्ग्रामश्च विद्यते। तदेकत्रावस्थाने सर्वमाद्यन्तविशुद्धं भवतीति यत्र स्थीयते, ततः पदमात्रमपि पुरो न गन्तव्यम्। यदि गम्यते, तदास्माकं शतं शपथा इति। बहिर्न्नामलिखनम्॥५१॥

स्वस्ति। न्यायोपार्जितवित्तवत्तापवित्रेषु यथाकालोचितचरिताचरणविचक्षणेषु गङ्गाप्रवाहनिर्मलमानसेषु वणिक्श्रीअमुकमहाशयेषु गोपालपुरात् विविधविनयोपनेत्री यथार्हपत्रीयम्। श्रीमतां स्वभावस्नेहात् कुशलमत्रेति सुचेतसि सुचेतसः सन्तोषः पोषणीयः। स्वकीयया सार्वदिकोत्साहवार्त्तया वयमानन्दनीयाः। कार्य्यञ्च—समागतमिखनार्थः समधिगतः। अस्माकं कृषिवृत्तीनां सर्वधान्यानां बीजमस्ति। तुलसीधान्यस्य बीजन्न विद्यते। तेन पुराणपञ्चाशत्प्रहितकपर्द्दकैः तद्बीजं क्रायंयित्वा दातव्यमिति यल्लिखितम्। श्रीमन्तः कृषिवृत्तयो देशकालोचितविधानकुशला इति बहूनां द्वारा बहुधा श्रुतमस्ति। वयमपि कृषिवृत्तय एव। तदाऽऽवयोरनन्यवृत्तितया प्रेमाचरणमुचितम्। तेनाऽस्माभिः तुलसीधान्यस्य बीजं गोलाबीजञ्च पञ्चाशततयं प्रेम्णैव प्रहितम्, यद्गृहीतव्यं च भवद्भिः। कपर्दकाश्च श्रीमतां यथागता एव गच्छन्तस्सन्ति तद्गृहीतव्याः पुरुषद्वारेति। बहिर्न्नामलिखनम्॥५२॥

स्वस्ति । निरवद्यराजनीतिनिष्णातमतिषु धर्मस्थितिस्थापनप्रकारपर (म) विख्यातहृदयशुद्धिषु समस्तेत्यादिमहामहत्तकठक्कुरश्रीअमुकेषु परम-सौहृदसुधासारसंसिक्तविनयविज्ञापनपत्रीयम् । कुशलमत्र । तत्रत्यकुशलं समीहामहे । कार्यञ्च—अत्र श्रूयते श्रीमहाराजाः श्रीअमुकमहाशयानां अनपेक्षया राज्यचर्यां कुर्वन्ति । श्रीमहाशयैः समं पूर्ववत् हृदयसङ्गति-र्नास्ति । तेनास्मच्चेतसि वैरस्यं विद्यते । वयं श्रीमहाशयानां सुहृदः, ते प्रभवः । प्रभुसेवा कर्मणा मनसा वाचा यावज्जीवं परिपाल्यते, कुलीना-नामिदमेव कृत्यम् । प्रभवः किमपि कुर्वन्तु, श्रीमद्भिर्मर्यादा न त्यक्तव्या । त्यज्यते वा तदा वयं श्रीमहाशयानां सुहृदः तिष्ठामः । अस्माकं धनानि प्राणाश्च विद्यन्ते ततोऽस्माकमायत्ते वस्तुन्यासक्तिः कर्त्तव्या । यदादिष्टं भवति, तदा तन्निश्शङ्कं युष्मास्वादेशनीयम् । सम्पदि केषां के सुहृदः ? सुहृदस्तु प्रस्तावे परिचीयन्ते । किं बहुनेति । बहिर्नामलिखनम् ।।५३।।

इति विद्यापतिविरचितायां लिखनावल्यां समकक्षपरिपाटिर्नाम तृतीयग्रथना ।

□

अथ व्यवहारलिखनानि

सिद्धिः। लसं २९९ माघवति ५ बुधे अमुकग्रामे प्रतिहस्तक महामहोपाध्यायश्रीअमुकशर्मभिः सपरिषद्भिः अर्थिब्राह्मणश्रीदेवदत्तप्रत्यर्थिराउत्तश्रीजयदत्तयोः ऋणविषयकविवादे मम पितुः पुराणशतमेकं कपर्द्दकं कलाव्यवस्थया अतीतपञ्चमवर्षे प्रत्यर्थिना ऋणत्वेन प्रगृहीत, तदिनानीं सोऽयं ददात्विति अर्थिना भाषायां कृतायां मया तद्धनं गृहीतम्। किन्तु तत्सर्वं मया कलासमेतमर्थिपितरि प्रत्यर्पितमिति प्रत्यर्थिनोत्तरिते भाषोत्तरे परामृश्य विचारे प्रारब्धे, करणोत्तरप्रत्यर्थिदिशि अनुसन्धाने अमुकामुकामुकशर्माणः त्रयः साक्षिणः प्रत्यर्थिनोपन्यस्ताः अर्थिना स्वीकृताश्च। तैः साक्षिभिर्व्यवस्थापितनिगददिने समागत्य सत्यपुरस्सरं निगदानात् प्रत्यर्थिना पूर्वगृहीतकपर्द्दकं पुराणशतमेकं सोदयं दत्त्वा निस्तीर्णमिनि सत्यम्। यस्योचुः साक्षिणः सत्यां प्रतिज्ञां विजयी भवेत्। अन्यथा वादिनो यस्य भवेत्तस्य पराजयः। इत्यर्थिनः पराजय इत्यवधार्य प्रत्यर्थिश्रीअमुकाय जयपत्रामद दत्तमिति ॥५४॥

सिद्धिः। परमभट्टारकेत्यादिराजावलीपूर्व्वंगतराजश्रीलक्ष्मणसेनदेवीयनवनवत्यधिकद्विशततम वर्षे भाद्रशुक्लचतुर्द्दश्यां शुक्रवारान्वितायामव मासपक्षतिथिदिवसानुक्रमण कालेऽभिलख्यमान यत्राङ्कनापि लस २९९ भाद्रशुदिः १४ शुक्र पुनः परमभट्टारक परमत्यादिसमस्तप्रक्रियाविराजमानपुण्यावलोकाश्वपतिगजपतिनरपतिराजत्रयाधिपतिराजसहस्रससेव्यमानखोदायवरलब्धप्रसादसकलविरुदावलीसमलङ्कृतमहासुरत्राणसाहिप्रचारे पुनः समस्तप्रक्रियाविराजमानारिपुराजकंसनारायणशिवभक्तिपरायणशीलपुण्यावलोकमहाराजाधिराजश्रीअमुकदेवपादानां सम्भुज्यमानराज्ये तीरभुक्तौ रत्नपुरदेशप्रतिबद्धमीगोतप्पासंलग्नमिम्बराग्रामे श्रीअमुकदत्ताः शूद्रशूद्रीक्रयणार्थं स्वधनं प्रयुङ्क्ते। धनग्राहकश्चैतत्सकाशात् नामतो राउत्तश्रीअमुकदत्त केनापि चाड्येन स्वदासं कैवर्त्तं वर्षचतुश्चत्वारिंशत्समुद्देशित वयस्कं श्यामवर्णं अमुकनामानं रूप्यटङ्कषट्तयेन तथैव तस्य वधूं समुद्दिशितवर्षत्रिंशद्वयस्कां गौरवर्णां अमुकीनाम्नीं रूप्यटङ्कचतुष्टयेन तथैव तयोः पुत्रं वर्षषोडशतयोद्दिशितव्यस्कं गौरवर्णं अमुकनामानं रूप्यटङ्कत्रयेण तथैव तयोः

पूत्रीं वर्षाष्टतयोद्देशितवयस्कां श्मामवर्णाममुकीनाम्नीममीषु धनिषु गोत्रा-गोत्रनिवारकं दत्वा चन्द्रार्क्कावधिना विक्रीतवन्तः। यत्र विक्रीत शूद्र शूद्री प्राणो विक्रयाङ्क १४। गोत्रागोत्रनिवारकाय समुभयदेये २।२। तदमी शूद्रा धनिकावासे हलवाहनोच्छिष्टस्फेटनपानीयानयन दोलोद्वाहनादि सकल-कर्म्मं करिष्यन्ति। यदि कदाचित्प्रपलाय्य गच्छन्ति थदाऽनेन पत्रपात्र-प्रामाण्येन राजसिंहासनतलगता अपि समुद्धृत्यानीय तदेते पुनर्द्दासकर्म्मणि युज्यन्ते। अत्रार्थे साक्षिणः देवदत्तयज्ञदत्तविष्णुमित्रादयः कृता भूताश्चेति लिखितमिदमुभयानुमत्या कायस्थश्रीअमुकेन। लिखापन देय समुभय रु १।१ इति। भरणपत्रमपीदमेव योज्यं श्वेतरूप्यटङ्क १४ विक्रयांक। धनं परीक्ष्य गृहीतं पत्रस्था एव साक्षिणः ॥५५॥

सिद्धिः। परमभट्टारकेत्यादिराजात्रलीपूर्व्वंगतराजश्रीलक्ष्मणसेन-देवोयनवनवत्यधिकद्विशततमवर्षे भाद्रशुक्लचतुर्द्दश्यां शुक्रवाराण्वितायामेवं मासपक्षदिवसानुक्रमेण कालेऽभिलिख्यमाने यत्रांकेनापि लसं संवत् २९९ भाद्र शुदि चतुर्द्दशी १४ शुक्रे पुनः परमभट्टारकपुण्यावलोकसमस्तप्रक्रिया-विराजमानश्रीअमुकदेवानां सम्भुज्यमानायां तीरभुक्तौ अमुकामुकतप्पा-सम्बन्धअमुकग्रामे राउतश्रीअमुकः शूद्रक्रयणार्थं स्वधनं प्रयुङ्क्ते। धन-ग्राहकोऽप्यमीषां सकाशात् नामतः राउतश्रीअमुकः पञ्चमध्यस्थकृतमूल्येन रूप्यटङ्कद्वयेनात्मानमात्मना चन्द्रार्क्कावधिना विक्रीतवान्। यत्र विक्रीत आत्माप्राणो १ विक्रयाङ्क रूप्यटङ्क २। गोत्रागोत्रनिवारको धर्म्म एव अयञ्च शूद्रो धनिकगृहे दासकर्म्मं करिष्यति। यदि कदाचित् प्रपलाय्य याति तदानेन पत्रप्रामाण्येन राजसिंहासनगतोऽप्यानीय पुनर्द्दासकर्म्मणि युज्यते। अत्रार्थे साक्षिणौ अमुकामुकौ कृतौ स्तः लिखितमुभयानुमत्या श्रीअमुकेन लिखापन उभयदेय। भरणपत्रमपीदमेव पत्रस्थौ साक्षिणौ ॥५६॥

सिद्धिः। परमभट्टारकेत्यादिराजावलीपूर्व्वंगतराजश्रीलक्ष्मणसेन-देवीयनवनवत्यधिकद्विशततमे वर्षे भाद्रशुक्लचतुर्द्दश्यां शुक्रवारान्वितायां यत्राङ्केनापि लसं २९९ भाद्रशुक्ल १४ शुक्रे पुनः परमभट्टारकत्यादि पुण्या-वलोकसमस्तप्रक्रियाविराजमानमहाराजाधिराजश्रीमदमुकदेवसम्भुज्यमानायां तीरभुक्तौ अमुकतप्पासंलग्नामुकग्रामे ठक्कुरश्रीदेवदत्ता सर्व्ववारव्यूढि-बन्धकार्थं स्वधनं प्रयुङ्क्ते। धनग्राहकोऽप्येतेषां सकाशात् नामतः राउत-श्रीअमुकः। राजकरदेयः चाडेन सर्व्ववारां व्यूढिमेकां रूप्यटङ्कचतुष्टय-

मादाय अमुकं बभिुञ्जायकं दत्वा बन्धकितम् । बन्धो यत्र वस्त्रपणशून्य-सर्व्वंबाराव्यूढि १ बन्धनांक रूप्यटंक ४ एते च शूद्रद्वारा धनिकगृहे भारोद्वहनादिकर्म्मं कारयिष्यन्ति यदि न कारयन्ति तदा व्यूढिपातसम्बन्धेन प्रतिदिनं काकिनीषट्तयं धनिकस्य प्रयच्छन्ति यत्र प्रतिदिन व्यूढिपात सम्पन्न १।। बहिभुञ्जापिका समुभयदेय ४ लिखितमिदमुभयानुमत्या ठक्कुर-श्रीदेवदत्तेन । लिखापन समुभयदेय रु० १ । अत्रार्थे साक्षिणः अमुका-मुकाः कृता भूताश्चेति भरणपत्रमपीदमेव । पत्रलिखिताः साक्षिणः ।।५७।।

सिद्धिः । परमभट्टारकेत्यादिराजवलोपूर्व्वंगतश्रीमल्ललक्ष्मणसेन-देवीयनवनवत्यधिकशतशतद्वयवर्षस्य भाद्रशुक्लचतुर्द्दश्या शनिवारे यात्रांकेनापि संवत् लसं २९९ भाद्रशुदि १४ शनो पुनः परमभट्टारकपुण्यावलाक-समस्तप्रक्रियाविराजमानमहाराजाधिराजश्रीमदमुकदेवानां सम्भुज्यमानायां तीरभुक्तौ अमुकदेवसम्बन्धअमुकपरिगणासंलग्नअमुकग्राम राउतश्रीअमुकाः समर्प्पित व्यूढिबन्धकार्थं स्वधनं प्रयुञ्जते । धनग्राहकाऽप्येतषां सकाशात् नामतः श्रीअमुकः केनापि चाड्येन शूद्रं कवत्त अमुकनामान श्यामवर्णं वर्षपञ्चविंशतितमवयस्कं आधो धृत्वा अमुकं व्यूढिभुञ्जापक दत्वा रूप्य-टंककपञ्चतयं गृहीतवान् । यत्र समार्प्पतबाहुप्राणा १ बन्धकांक ५ शूद्रस्य प्रतिदिनदेय पुरुषाहार १ प्रतिवर्षदेयसनकर्पटकपासपट १ यदि केनचिद्विशेषेण बहिपातो भवति तदा व्यूढिपातसम्बधेन पणद्वय प्रतिदिनं बहिभङ्गो धनिषु दीयते यत्र पण २ अयञ्च दासा धनिकदास इव सकल-दासकर्म्मं करिष्यति बहिभुञ्जायिका ऊभयदेय २।२ दासपलायनपक्ष बन्धकांक बहिभुञ्जापको दयात् । अत्रार्थे साक्षिणः अमुकाः कृता भूताश्चेति, लिखितमुभयानुमत्या श्रीअमुकेन लिखापनं समुभयदेयं रू २ इति ।।५८।।

सिद्धिः । परमभट्टारकेत्यादिराजावलीपूर्व्वंगतराजश्रीलक्ष्मणसेन-देवीयनवनवत्यधिकद्विशततमवर्षस्य भाद्रशुक्लचतुर्द्दश्यां शुक्रवारान्वितायां एव मासपक्षतिथिदिवसानुक्रमणाभिलिख्यमाने यत्रांकेनापि संवत् लसं २९९ भाद्रशुदि १४ शुक्रं पुनः परमभट्टारकेत्यादिसमस्तप्रक्रियाविराजमान-राजाधिराजश्रीअमुकदेवाना सम्भुज्यमानायां तीरभुक्तौ अमुकदेशप्रतिबद्धा-मुकतप्पासंलग्नामुकग्रामे ठक्कुरश्रीअमुकाः चतुर्व्वारव्यूढिबन्धकार्थं स्वधन प्रयुञ्जते । धनग्राहकोऽप्येतत्सकाशात् नामतः कैवर्त्तोऽमुकः केनापि

चाड्येन चतुर्व्वारां व्यूढिमेकां अमुकं भुञ्जापकं दत्त्वा रूप्यटंकचतुष्टयमादाय बन्धकितवान्। यत्र बन्धकितवान् तत्र बन्धकितचतुर्व्वारां व्यूढि १ बन्धकांक रूत्यटंकक ४। यदि बहिपातो भवति तदा दिने दिने षट् काकिनीं बहिभुञ्जापको देयादिति यत्र प्रतिदिने १॥ वहिभुञ्जापिका सममुभयदेया २ रूप्यटंक। अत्रार्थे साक्षिणः अमुकामुकाः कृता भूताश्चेति लिखितमुभयानुमत्या श्रीअमुकेन लिखारन सममुभयदेय इति ॥५९॥

सिद्धिः। परमभट्टारकेत्यादिराजलक्ष्मणसेनदेवीयनवनवत्युत्तरद्विशततमवर्षस्य भाद्रशुक्लचतुर्द्दश्यां शुक्रवारान्वितायां एवं मासपक्षतिथिक्रमेणाभिलिख्यमाने यत्रांकेनापि संवत् लसं २९९ भाद्र शुक्ल १४ शुक्ले समस्तप्रक्रियाविराजमानराजश्रीअमुकदेवपादानां सम्भुज्यमानायां तीरभुक्तौ अमुकग्रामे उपाध्यायश्रीअमुकः शूद्रक्रयणार्थं स्वधनं प्रयुञ्जते। धनग्राहकोऽयेतत्सकाशान्नामतः कायस्थश्रीअमुकः कैवर्त्त शूद्रश्रीअमुकस्य सुतां अमुकीनाम्नीं कन्यां गौरीं वराटिकां पुराणचतुष्टयमादाय कैवर्त्त शूद्रश्रीअमुकस्य सुतश्रीअमुकेषु विवाहविधिना विक्रीतवान्। यत्र विक्रीतप्राणिशूद्री १ विक्रयांक ४। अत्रार्थे साक्षिणः अमुकामुकाः कृता भूताश्चेति लिखितमिदमुभयानुमत्या श्रीअमुकेन लिखापनसममुभयदेय १॥ यत्र कैवर्त्त गोरा ओऽपु ४ अमातादिपुं ८।४ इति ॥६०॥

सिद्धिः। लसं २९९ कार्त्तिक शुदि ५ रवौ उत्तमर्णचतुर्व्वेदिश्रीअमुकमहाशयानां अधमर्णास्त्रयः कुलकैवर्त्त धीवराः अमुकामुकनामानः ऋणपत्रं प्रयच्छन्ति। साहुश्रीअमुकं प्रतिभुवं दत्त्वा दशदशदशतयरौप्यटंककान् सपादिकाव्यवस्थया गृहीतवन्तः। यत्र गृहीतटंक ३०। प्रतिभूसाहुश्रीअमुकस्य व्यवस्थया अहं कुलअमुकामुकस्य दशटंकदर्शको लग्नकः, कैवर्त्तअमुकस्य दशटंकप्रत्यायकलग्नकः, धीवरअमुकामुकस्य टंकदशतये दातृलग्नकोऽस्मि। यद्यहं प्रत्यायकलग्नकः तस्यासाधुत्वपक्षे वित्तं दास्यामि। तद्यहं दर्शककलग्नकः तन्दर्शयामि, यदि दर्शयितुन्न शक्नोमि तदा तद्वित्तं दास्यामि। यत्र हि दातृलग्नकः तद्वित्तं तद्द्वारा दापयामि, स्वयं वा दास्यामि। अत्रार्थे साक्षिणः अमुकामुकाः कृता इति ॥६१॥

सिद्धिः। अमुकनगरे अमुकामुकनामानश्चत्वारो भ्रातरो विवदमानाः परस्परं निस्सम्बन्धपत्रीं प्रयच्छन्ति अस्माकं पैत्र्यं पैतामहञ्च

साधारणं स्थावरजङ्गमञ्च यद्धनमासीत् तत्तज्ज्येष्ठांशत्वेन ज्येष्ठस्य दत्त्वा सौदायिकस्त्रीधनवर्ज्जमक्षपूर्व्वकं धिभाज्यं विभुज्य यथाभागमस्माभिर्गृहीतं ततोऽग्रे नः परस्परंकोऽप्यर्थे सम्बन्धो नास्तीति। अत्रार्थे साक्षिणः अमुकामुकाः कृता भूताश्चेति ॥६२॥

सिद्धिः। अमुकग्रामे लसं २९९ चैत्रवदि १४ गुरौ अमुकग्रामे महत्तमश्रीअमुकेषु प्रजा अमुकेन स्वकीयभूमेः स्वदेयंपञ्चकञ्च पुराणविंशतित्रयं प्रवेशितम्। यत्र प्रवेशितरूप्यटंक २०। तद्देयप्रवेशपत्रीयं दत्तेति ॥६३॥

सिद्धिः। लसं २९९ चैत्रवदि १४ गुरौ अमुकनगरे समस्तप्रक्रियाविराजमानमहाराजाधिराजश्रीअमुकसिंहदेवपादेषु मोकद्दमश्रीसुरारिकैः रूप्यटंकशतचतुष्टयं समानीयनववर्षस्य हालदेयं राउतश्रीकरभूद्वारा पोत्रे प्रवेशितम्। यत्र प्रवेशितरूप्यटंक ४००। तदेतस्य भूयूतिरियं दत्तेति ॥६४॥

सिद्धिः। अमुकनगरात् समस्तप्रक्रियाविराजमानरिपुराजकंसनारायणशिवभक्तिपरायणमहाराजाधिराजश्रीमदमुकदेवपादाः समरविजयिनः मोकद्दमश्रीवनमालिकान् संवादयन्ति—विदितमस्तु भवतः पार्श्वे राउतश्रीमदनसिंहमहाशयेषु समानवर्षस्य तदस्य च ओजेहदामं रूप्यटंकशतमेकं भवतः पार्श्वेऽवपातं दापितम्। यत्र समानवर्षस्य रूप्यटंक १०० तदेतत्पत्रमनुमत्य जवेन तस्यायाः (?) १ गतसमानवर्षस्य बाकीदामे दास्यथेति ॥६५॥

सिद्धः। लसं २९९ वैशाखशुदि तृतीयायाञ्चन्द्रे पाटलिपुरनगरे भट्टश्रीअमुकशर्माणः नायक श्रीअमुकेषु निस्तारपत्रीं प्रयच्छन्ति। पुराऽस्माकं मुद्रासहस्रमेकं प्रतिमासं प्रतिमुद्रां चतुष्पणीकलां नियम्य यद्दणत्वेन भवद्भिर्गृहीतम्, तत्राद्यपर्य्यन्तेन किमपि न दत्तम्। इदानीं पञ्चमध्यस्थैर्निर्द्धारितं द्विगुणीकृत्य दायितम्। तत्र मुद्रासहस्रद्वयं गृहीत्वाऽस्माभिर्न्निस्तारिता यूयम्, तस्येयं निस्तारपत्री दत्ता। अत्रार्थे साक्षिणः अमुकामुकः कृताभूताश्चेति ॥६६॥

सिद्धिः। गङ्गातीरे पण्डितश्रीअमुकाः शूद्रश्रीअमुकेषु निस्तारपत्रीं प्रयच्छन्ति। अस्माकं न्यायधनक्रीतेन दासेन त्वया महती सेवा कृता

तत्सेवापरितुष्टैरस्माभिश्चन्द्रार्कावधिना दासो निस्तारितोऽसि। सुखेन यत्र तिष्ठसि, यत्र वा गच्छसि, तत्र क्वाप्यस्माकं त्वयि धने च स्वत्वं नास्तीति। अत्र धर्म एव साक्षीति ॥६७॥

सिद्धिः। लसं २९९ कार्त्तिक शुदि ५ गुरुवासरे अमुकग्रामावस्थित-उपाध्यायश्रीअमुकशर्म्मसु लेखिश्रीअमुकः प्रामितकपत्रीं प्रयच्छति। मास-चतुष्टयकटेन टंकविंशतितयं श्रीमतामस्माभिः प्रामितकत्वेन गृहीतम्। यत्र प्रामितकगृहीतरूप्यटंक २०। कटमास ४। यदि कदाचित्कटाभ्यन्तरे न दीयते तदा लोकव्यवहारकलापरिप्राप्तकला वर्द्धते प्रतिमासं प्रतिटंककं पणचतुष्टयम्। यत्र मासिककला सं० पु० ५। अत्रार्थे साक्षिणः अमुका-मुकाः कृताभूताश्चेति ॥६८॥

सिद्धिः। लसं २९९ माघशुदि ५ शुक्रे अमुकनगरे साहुश्रीअमुकेषु (अथवा) वणिक्श्रीअमुकेषु श्रीअमुकाः ऋणपत्रीं प्रयच्छन्ति। तदत्रेत्यादि पुराणकपर्द्दकशतमेकं वर्षसपादिकाव्यवस्थया भवतामृणत्वेनास्माभिर्गृहीतम्। यत्र गृहीतकपर्द्दकपुराण १००। वर्षे सपादिकासंलभ्य देय पुराण गत (?) २५ एवं १२५। अत्रार्थे साक्षिणः अमुकामुकाः कृताभूताश्चेति ॥६९॥

सिद्धिः। लसं २९९ माघवदि ७ रवौ ठक्कुरश्रीअमुकेषु वणिक्-साहुश्रीअमुकः ऋणपत्रीं ददाति। तदत्रेयादि कन्याविवाहकरणचाड्येन भवतामृणत्वेन मासि मासि प्रतिटंककं पणषट्तयं कलात्रियम्य टंकदशतय-मस्माभिर्गृहीतम्। यत्र गृहीतरूप्यटंक १०। प्रतिमासिकटंकक प्रतिकला २। अत्रार्थे साक्षिणः अमुकामुकाः कृताभूताश्चेति ॥७०॥

सिद्धिः। लसं २९९ कार्त्तिकशुक्ल रवौ अमुकग्रामे ठक्कुरश्रीअमुकेषु पंकारश्रीअमुकः ऋणपत्रीं ददाति। श्रीमन्महाशयानां रूप्यटंकपञ्च-दशतयं खेपीव्यवस्थया वाणिज्यार्थं महागृहीतम्। यत्र गृहीत रूप्यटंक १५। प्रतिटंकक खेपी १ शिवाक्षमेकं खेपी दास्यामीति। यत्र प्रतिटंकक-लभ्यादत्र शिवाक्ष ३ एवं लाभमूलाभ्यां रूप्यटंक १८। अत्रार्थे साक्षिणः अमुकामुकाः कृताभूताश्चेति ॥७१॥

सिद्धिः। लसं २९९ मार्गशुदि ५ बुधे साहुश्रीअमुकेषु गृहस्थ-श्रीअमुकः व्यवस्थापत्रीं ददाति। रूप्यटंककदशतयं युष्माकं मया मोला-व्यवस्थया गृहीतम्। यत्र धान्योत्पत्तिसमये धान्यखारिदशतयं कृत्वा

प्रति (रूप्य) टंकमूल्येन दास्यामि यत्र गृहीत रूप्यटंक १०। दातव्यधान्य-खारी १००। अत्रार्थे साक्षिणः अमुकामुकाः कृताभूताश्चेति ॥७२॥

सिद्धिः। लसं २९९ आषाढवदि ९ चन्द्रे वणिक्साहुश्रीअमुकेषु गृहस्थअमुकः व्यवस्थापत्रीं ददाति। तदत्रेयादि युष्माकं प्रतिटंककं धान्यमानी चतुष्टयं नियम्य देयं टंकद्वयमाधीव्यवस्थया मया गृहीतम्। धान्योत्पत्तिसमये युष्माकं टंकद्वयं आधीसमेतं दास्यामि। यत्र देयमूलटंक २। आधीसम्बन्धेन देयधान्यमानी ८। अत्रार्थे साक्षिणः अमुकामुकाः कृताभूताश्चेति ॥७३॥

सिद्धिः। लसं २९९ कार्त्तिक शुदि ५ गुरौ चत्वारः सम्भूय एकत्र व्यवसायिनो वणिजः परस्परं व्यवस्थापत्रीं ददति। अस्माभिश्चतुर्भिरपि कस्याप्युत्तमर्णस्य धनेन वाणिज्यार्थं गम्यते। वाणिज्यकार्ये निष्पन्ने मूलधनं वणिजो दातव्यम्। लाभधनमस्माभिरपि समभागं विभुज्य गृहीतव्यम्। अत्रार्थे साक्षिः अमुकामुकाः कृताभूताश्चेति ॥७४॥

सिद्धिः। लसं २९९ माघवदि १० शुक्रे अमुकनगरे साहुश्रीअमुकेषु नायकश्रीअमुकाः ऋणपत्रीं प्रयच्छन्ति। सुवर्णतोलकदशतयं आधी धृत्वा रूप्यटंककत्रिशतितयमस्माभिर्भक्तामृणत्वेन मासि मासि पणचतुष्टयन्नियम्य गृहीतम्। यत्र बन्धके धृत तोला १०। प्रतिमासं प्रतिटंकक कलां सन्देय पु० ४। अत्रर्थे साक्षिणः अमुकामुकाः कृताभूताश्चेति ॥७५॥

सिद्धिः। लसं २९९ फाल्गुनवदि ७ चन्द्रे अमुकग्रामे राउतश्री-अमुकानां साहुश्रीअमुदकत्तः धेनु सापत्यां गामेकां, हलकर्मधुरन्धरं वृषभमेकं (आधौ धृत्वा) टंककत्रयं ऋणत्वेन गृहीतवान्। यत्र गृहीतटंकक ३। बन्धके धृतधेनुसवत्सा गौ १, धुरन्धर वृषभ १। कला-भरणे दोह्यथवाह्योः निष्क्रयपर्य्यन्तं व्यूढी। अत्रार्थे साक्षिणः अमुकामुकाः कृताभूताश्चेति ॥७६॥

सिद्धि। लसं २९९ वैशाखशुक्ल १२ शनौ अमुकग्रामे कायस्थ-ठक्कुरश्रीअमुकेषु वणिक्पुरपतिश्रीअमुकाः ऋणपत्रीं ददति। तदत्रेत्यादि राजदण्डचाण्डयेन राजपुरुषताडनभयेन रूप्यटंककविंशतितयं कलासम्बन्धेन प्रतिटंकं पणमकं व्यवस्थाप्य गृहीतम्। यत्र गृहीतटंकक २०। प्रतिदिन कलादेय १। अत्रार्थे साक्षिणः अमुकामुकाः कृता भूताश्चेति ॥७७॥

सिद्धिः। लसं २६६ भाद्रवदि १२ कुजे अमुकग्रामे वैश्यवणिक्श्रीअमुकगुप्तेषु कैवर्त्तश्रीअमुकदासाः ऋणपत्रीं प्रयच्छन्ति। भवतां धान्यखारीदशतयं डेढ़ीव्यवस्थया धान्योत्पत्तिकटपर्यंन्तेन मया गृहीतम्। यत्र गृहीतधान्यखारी १०। अस्य लभ्यधान्यखारी ५। कटधान्योत्पत्तिपर्यंन्त। अत्रार्थे साक्षिणः अमुकामुकाः कृताभूताश्चेति ॥७८॥

सिद्धिः। लसं २६६ कार्त्तिक शुदि गुरौ पाटलिपुरनगरे कायस्थश्रीअमुकदत्तेषु वणिक्साहुश्रीअमुकः व्यवस्थापत्रीं ददाति। पुरातनमृणं यदस्मासु भवदीयमासीत् तत्र यद्दत्तं दत्तमेव यदवशिष्टन्तिष्ठति तेन मया वणिज्या कर्त्तव्या वणिज्या यावल्लाभो भविष्यति, तावति धनलाभचतुर्भागं प्रतिगतागतं युष्मासु दास्यामि। यदि न दास्यामि तदा सोदयं मम देयं भवति। अत्रार्थे साक्षिणः अमुकामुकाः कृता भूताश्चेति ॥७६॥

सिद्धः। लसं २६६ श्रावनशुदि ५ गुरौ अमुकनदीतीरे राउतश्रीअमुकेषु धीवरश्रीअमुकः व्यवस्थापत्रीं ददाति। तदत्रेत्यादि मासि मासि भाटकमङ्गीकृत्य युष्माकं नौकामहं स्वार्थार्थं नयामि। अनया नौकया नौकाकृतकं स्वकार्यं करिष्यामि। कार्यावसाने प्रतिमासभाटकं कौकाञ्च समानीय दास्यामि। यत्र नौका १। (प्रति) मासं (भाटक) टंक २। यदि मयाऽनवधानेन राजदैवकं नौकाविनाशो भवति, तदा पञ्चमध्यस्थजनितनौकामूल्यञ्च देयं भवतीति। अत्रार्थे साक्षिणः अमुकामुकाः कृताभूताश्चेति ॥८०॥

लसं २६६ माघशुदि १४ गुरौ अमुकग्रामे उत्तमर्णठक्कुरश्रीअमुकेषु अधमर्णराउतश्रीअमुकः क्रियापत्रं ददाति। यतो हि पुराणशतद्वयं भवतामृणन्धारयामि, भवतान्तददत्त्वा भवत्सन्निधानं परित्यज्यान्यत्र न गच्छामि। गमिष्यामि चेत्तदाऽनिष्टफलभाजनं भवामीति प्रतिज्ञाय शिवलिङ्गं स्पृशेयमिति सत्यम्। अयमर्थः समाक्षरपङ्क्तिद्वयेन लिखनीयः ॥८१॥

श्रीमद्देवदत्तः तप्तमार्गाकर्षणदिव्ये प्रतिज्ञायते श्रीपद्मायाः योनौ मया रेतो न सिक्तिमिति सत्यम्। तत्रैव दिव्ये पद्मया इति प्रतिज्ञायते मम योनौरेतो न सिक्तमिति सत्यम् श्रीविष्णुमित्रस्य जलमज्जनदिव्ये

प्रतिज्ञायते श्रीशिवदासस्य धनं यद्दणत्वेन मया गृहीतं, तत्परिशोधितमिति सत्यम्। पदांकितं मया दातव्यम्—

आदित्यचन्द्रावनिलानलौ च
द्यौर्भूमिरापो हृदयं यमञ्च।
अहश्च रात्रिश्च उभेच सन्ध्ये
धर्मश्च जानाति नरस्य वृतम्॥

अयञ्च श्लोकः प्रतिज्ञापत्रे च लिखनियः। प्रतिज्ञा च समाक्षर-पङ्क्तिद्वयेन लिखनीया। अथ दिव्यकालः आग्राहणिकचैत्रवैशाखाः सर्वं-दिव्ये साधारणमासाः। शिशरवसन्तवर्षासु वह्निः। शरदि ग्रीष्मे पानीयमिति॥८२॥

स्वस्ति। अमुकनगरे विविधविरुदावलीविराजमानराजाश्रीअमुक-राज्ये श्रीअमुकौ परस्परं व्यवस्थां कुरुतः अद्यारभ्यावाभ्यामन्योऽन्यं शात्रवं परित्यक्तव्यम्, मैत्री प्रतिपालनीया, परस्परमिष्टं कर्त्तव्यं, अनिष्टं निवार-णीयं, भूमिसीमा नातिक्रमणीया। अस्मिन्नर्थे राउतश्रीअमुकसिंहमन्तरा दत्ता। एतैश्चान्तरकं सुकृतम्—यश्चानयोर्मध्ये समयलङ्घनं करिष्यति, तमहं स्वकीयधनप्राणप्रयुक्तिभिर्निवारयिष्यामि। यदि न निवारयामि, तदा कृतघ्नपुरुषपापभाजनं भवामि॥८३॥

उपाध्यायश्रीअमुकपितरि उपाध्यायश्रीअमुकशर्मणि कायस्थश्री-अमुकेन रूप्यटंकदशतयमूल्यमादाय शूद्रोऽमुकः सपत्नीको विक्रीत इत्यहं जानामीति सत्यम्।

अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेवातिरिच्यते।
ब्रूहि साक्षिन्नं यद्वृत्तं कम्पन्ति पितरस्तव॥
नग्नो मुण्डः कपालो च भिक्षार्थी क्षुत्पिपासितः।
क्रुद्धशत्रुकुलं गच्छेद्यदि साक्ष्यनृतं वदेत्॥८४॥

इति श्रीविद्यापतिविरचितायां लिखनावल्यां व्यवहारलिखनपरि-पाटिर्न्नाम चतुर्थी ग्रथना।

आदित्यचन्द्रावनिलानलौ च द्यौर्भूमिरापो हृदयं यमश्च ।
अहश्च रात्रिश्च उभे च सन्ध्ये धर्मश्च जानाति नरस्य वृत्तम् ॥
लिखनोक्तयः ॥८५॥

उच्चैः कक्षलिखने

अमुकस्याष्टाङ्गप्रणामपत्री, प्रमाणपत्री, नमस्कारपत्री, शिरोन्यस्त-करकमलस्य नमस्कारपत्री, आभूमिनमितशिरसो नमस्कारपत्री, सेनापत्री । अथवा अमुकचरणान् दण्डवत्प्रणमिति, नमस्कुरुते, शिरसि निधाय नमस्कुरुते, सादरमभिवन्दते, शिरसि निधाय सेवते, नमितमौलिभिर्नमस्कुरुते इत्यादि ॥८६॥

अथाधःकक्षेषु

निदेशपत्री, आज्ञापत्री, आशीःपत्री, अनुग्रहसंवादपत्री, सादरसंवाद-पत्री अथवा श्रीअमुकचरणाः अमुकमादिशन्ति सानुग्रहं संवादयन्ति इत्यादि ॥८७॥

अथ समकक्षेषु

कार्यपत्री, कुशलपत्री, विज्ञापनपत्री, निवेदनपत्री, विनयपत्री, प्रेमपत्री, सम्बोधनपत्री, आलिङ्गनपत्री, यथार्हपत्री अथवा विज्ञापयन्ति, विनयन्ति इत्यादि ॥८८॥

जित्वा शत्रुकुलं तदीयवसुभिर्येनार्थिनस्तर्पिता ।
दोर्दर्पार्जितसप्तरीजनपदे राज्यस्थितिः कारिता ।
सङ्ग्रामेऽर्जुनभूपतिर्विनिहतो बन्धौ नृशंसायित-
स्तेनेयं लिखनावली नृपपुरादित्येन निर्मापिता ॥

□

हिन्दी- अनुवाद

विद्यापति - लिखनावली

ऐश्वर्याभिलाषी विनत देवता और दानव की मुकुटमणि से पूजित चरण - कमल - वाले गणेश को, प्रसन्न करने के लिए, हम प्रणाम करते हैं, जिनके प्रसन्न होने पर सभी अर्थों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) की सिद्धि होती है । ॥१॥

सर्वादित्य के पुत्र द्रोणवार के राजा पुरादित्य 'गिरिनारायण' की आज्ञा का पालन करता हुआ मैं (कवि) अल्पज्ञों के उपदेश तथा विज्ञ व्यक्तियों के प्रमोद एवं सज्जनों की प्रसन्नता के लिए लिखनावली की रचना करता हूँ ।

अपने से बड़े, छोटे तथा समकक्ष व्यक्तियों के साथ पत्राचार तथा नियम एवं व्यवहार -सम्बन्धी लेखन-पद्धति लिखी जाती है ।

उच्च वर्ग के लिए लेखन -पद्धति

स्वस्ति । श्रेष्ठ देवताओं से भी श्रेष्ठ देवता -स्वरूप, परम पूज्य, रमणीय आचार और चमत्कार में ब्रह्मा के समान मनवाले, विद्या से वसिष्ठ आदि (विद्वत्) समूह को भी जीतनेवाले, महामहोपाध्याय गुरू श्रीदेवदत्त महाशय को अमुक ग्राम से छात्र श्री अमुक का पृथ्वीतल का सर्वांग स्पर्श करनेवाले अष्टांग प्रणाम से युक्त यह पत्र है । श्रीचरण की अनुकम्पा से यहाँ कुशल है । विषय यह है कि श्रीचरण के समीप व्याकरण का अध्ययन कर मैं अनध्याय के समय कुछ दिनों के लिए घर आया हूँ । अब अध्ययन का विहित समय आने पर वहाँ जाकर शास्त्र का अध्ययनकरना चाहता हूँ । इसलिए, द्रव्यगुण, लीलावती तथा कुसुमांजलि नाम की पुस्तकें, नमूने के रूप में भेजने का आदेश मुझे दिया जाय । अधिक क्या ? पत्र -चिह्न के रूप में नारियल के चार फल भेजे गये हैं । वहाँ भेजे गये फल ४ ॥१॥

दूसरा प्रकार

स्वस्ति । अमुक नगर में देववाणी के गुणोदय से समस्त बुधजनों की मनोवृत्ति को परितुष्ट करनेवाले, कुन्द (पुष्प) के समान स्वच्छ कीर्तिवाले सन्मिश्र श्रीमान् अमुक शर्मा के चरण - कमलों में अमुक ग्राम से विनत-शिर श्रीअमुक का यह प्रणाम-पत्र है । विज्ञापन यह है कि श्रीमान् के चरण-कमलों में विहित विद्या के उपार्जन की प्रतिष्ठा के लिए मैं गुरु-दक्षिणा के रूप में एक सौ स्वर्ण -मुद्रा भेज रहा हूँ । उसे अनुग्रह कर श्रीगुरूचरण ग्रहण करें ॥२॥

स्वस्ति । वाराणसी में, श्रीवीरेश्वर मठ में वेदान्त के सिद्धान्त से शुद्ध अन्तः -करण की

वृत्तिवाले, यम,[१] नियम,[२] आसन,[३] प्राणायाम,[४] प्रत्याहार,[५] ध्यान, धारणा,[६] तथा समाधि[७] इन अष्टांग इन अष्टांग योगों के अभाव से समग्र इन्द्रिय समूह को अपने वश में कर लेनेवाले, त्रिदण्ड परिव्राजकाचार्य (तीन दण्डवाले श्रेष्ठ संन्यासी) श्रीमान् अमुक के चरणों में राजधानी से राजश्री अमुक देव का शतशः दण्डवत् प्रणाम का बोधक यह पत्र है। श्रीचरण के कृपापूर्ण शुभाशीष के प्रसाद से कुशली हमारे परिवार में मंगल, जनपद में शुभ -आचरण, सेना में शक्ति, अनुचरों में पवित्रता, शुत्रुओं में दर्प की हानि और खजाने में दोष का अभाव है, इसलिए प्रसन्न चित्त से हम अपना कर्त्तव्य कर रहे हैं। सकल सामग्री एवं सम्पत्ति के समाचार से हमरे मन को प्रसन्न किया जाय। प्रयोजन यह है कि तीर्थस्थान में निवास करनेवाले श्रीचरण की भिक्षा में सुविधा के लिए ३ सौ स्वर्णमुद्राएँ भेजी गई हैं, जिनमें १० पल सुवर्ण (भेजे गये) हैं। इन्हें अनुग्रहपूर्वक ग्रहण करने की आज्ञा समीपवर्त्ती स्नातकों को दी जाय, जिससे वे हमारे नाम से भिक्षा -वस्तुओं की व्यवस्था कर यथासमय ले जायँ। पत्र के चिह्न के लिए प्रेषित नेपाल कम्बल १, शीश कमण्डल १। अधिक क्या (लिखा जाय ?) ॥३॥

स्वस्ति। परमाराध्य, पिशुनता के त्याग से पवित्र, प्राण-धारण के लिए आठ कौर भोजन ग्रहण करनेवाले, श्रीमान् महेश्वर के ध्यान में संलग्न चित्तवाले, जटा, भस्म और कपाल से सुशोभित पाशुपताश्रम- परिग्रह के चिह्नवाले, परमतप : शील , परम माहेश्वर तत्त्वज्ञान से युक्त गुरुवर श्री अमुक के चरणों में अमुक ग्राम से मिश्र श्री अमुक का यह अष्टांग - प्रणामपत्र है। शिवधर्म आदि सकल तपश्चरण में निरत श्रीमान् सदा काशी में ही रहते हैं और जब मैं उस मार्ग से आया, तब करुणावारिधि श्रीचरण ने मुझे आशीर्वाद दिये। उनके फल से मैं अभी धनवान्, पुत्रवान् तथा आयुष्मान् हूँ, यह निवेदित किया गया तथा श्रीचरण के शिष्य श्री करुणाकर ब्राह्मण द्वारा कुछ भिक्षा -सामग्री भेजी गई है। कृपापूर्वक (वह भिक्षा-सामग्री) स्वीकार की जाय। अधिक क्या (लिखूँ ?) ॥४॥

---

१. *संयत करना; संयम; नियन्त्रित करना; दमन करना; यमों की संख्या दस है*

ब्रह्मचर्यं दया क्षान्तिर्दानं सत्यमकल्कता ।
अहिंसाऽस्तेयमाधुर्ये दमश्चेति यमाः स्मृताः ॥ (याज्ञ०)

३.३१३; आनृशंस्यं यदा सत्यमहिंसा क्षान्तिरार्जवम् ।
प्रीतिः प्रसादो माधुर्य मार्दवं च यमा दश ॥
योगप्राप्ति के आठ अंगों या साधनों में पहला साधन ।

२. *योप्राप्ति के आठ अंगों या साधनों में दूसरा; विधान या निश्चय के अनुकूल नियन्त्रण; वह संकल्प, जिसका सदा निर्वाह किया जाय ।*

३. *विशेष अंगविन्यास वा बैठने का ढंग अथवा योगाभ्यास करने के समय का बैठने का विशेष ढंग ।*

४. *श्वास- प्रश्वास की गति का नियमन, योग के आठ अंगों में एक ।*

५. *इन्द्रिय-दमन करना ।*

६. *मस्तिष्क में कोई वस्तु धारण करने की शक्ति, धैर्य : 'धीर्धारणावती मेधा' (अमर०) ।*

७. *मन को एकाग्र करना; किसी एक विषय पर मन को केन्द्रित करना; ब्रह्मचिन्तन में पूर्ण लीनताः 'आत्मेश्वराणां नहि जातु विघ्नाः समाधिभेदप्रभवो भवन्ति ।'*

स्वस्ति । परमाराध्य, निरुपाधि स्नेह से सम्पादित पोषण, वर्द्धन (?) नीति[1] और विनय[2] के शिक्षण के ज्ञान में समर्थ श्रीमान् पिता के चरणों में अमुक ग्राम से श्री अमुक का यह अष्टांग प्रणाम-सहित पत्र है । श्रीमान् के शुभाशीषं के प्रभाव से यहाँ कुशल है, यह जानकर आप प्रसन्न हों । अपने कुशल के समाचार से मेरे चित्त को आनन्दित करें । प्रयोजन यह है कि श्रीचरण की आज्ञा को शिरोधार्य कर जिस कार्य के लिए मैं आया हूँ, वह कार्य सम्पन्नप्राय है । दो-तीन दिन यहाँ ठहरकर शेष कार्य सम्पन्न कर वहाँ मैं आनेवाला ही हूँ । अतः, मेरे लिए चिन्ता न करें । अधिक क्या (लिखूँ ?) ।।५।।

स्वस्ति । परमाराध्य, संसार की उत्पत्ति का कारण होने से प्राणी के द्वारा प्रतिदिन पूजनीया श्रीयुक्ता माता ठकुराइन को अमुक ग्राम से आपकी चरण- धूलि से धूसर शिरवाले श्रीअमुक का यह प्रणाम -पत्र है । आपके आशीर्वाद से यहाँ कुशल है । वहाँ का कुशल चाहता हूँ । निवेदन यह है कि जबसे दूर रह रहा हूँ, तबसे राज-सम्मान का अनुभव करने पर भी हमारे मन में प्रसन्नता नहीं है और न सन्तोषप्रद भोजन प्राप्त हुआ है । क्योंकि, जिसने आपके वात्सल्य का अनुभव किया है, उसका अन्यत्र निर्वाह कैसे होगा ? माता के गुण का वर्णन कैसे किया जा सकता है ? क्योंकि, गंगा की स्तुति भी माता कहकर ही की जाती है । मैं वहाँ अब प्रायः आ ही रहा हूँ । मेरे दूर रहने पर भी मेरे लिए किसी प्रकार की चिन्ता आपको नहीं करनी चाहिए । आप केवल शुभ आशीष दें । अधिक क्या (लिखूँ ?) ।।६।।

स्वस्ति । परमाराध्य, स्नेह और मान्यता दोनों के सम्मिलित विश्राम के लिए वृक्ष -रूप, पिता -तुल्य, ज्येष्ठ भ्राता ठाकुर श्रीअमुक महाशय को अमुक ग्राम से श्रीअमुक का शतशः प्रणामयुक्त यह पत्र है । श्रीमान् भ्रातृ -चरण के स्नेहाधिक्य से यहाँ कुशली हूँ और वहाँ का समाचार चाहता हूँ । काम यह है कि श्रृंखला में बँधे अमुक शूद्र को बन्धन से मुक्त करने के लिए जो आज्ञा दी गई है, वह यद्यपि मेरे लिए अनिष्टकारी है, मैने उसे बहुत क्रुद्ध होकर बाँधा था, तथापि आपके लिखे हुए का उल्लंघन नहीं कर सकता हूँ । इसलिए, आपके लेख को देखते ही मैने उसे बन्धन से मुक्त कर दिया । इसी तरह सदा मुझ आज्ञाकारी को स्नेह-धारा से वंचित नहीं करेगें (मुझ आज्ञाकारी के प्रति स्नेह -भावना का परित्याग नहीं करेंगे । ।।७।।

स्वस्ति । अमुक नगर में उन्नत दण्ड, रेशमी मुकुट, सिंहासन,छत्र, चामर इत्यादि समग्र प्रक्रिया (राजचिह्न) से विराजमान, समरजयी महाराजाधिराज श्रीमान् अमुकदेव के पाद- पद्मों में अमुक नगर से दलपति (सेनापति) श्रीअमुक सिंह का करबद्ध (शिर के समीप दोनों हाथ

---

१. *व्यवहार का ढंग; बर्त्ताव का तरीका; वह आधारभूत सिद्धान्त,जिसके अनुसार कोई कार्य संचालित किया जाय; लोकव्यवहार के निर्वाह के लिए नियत किया गया आचार; लोकाचार की वह पद्धति, जिससे अपना कल्याण हो और दूसरे को हानि न पहुँचे; कार्य- विशेष की सिद्धि के लिए काम में लाई जानेवाली युक्ति ।*

२. *अनुशासन; भद्रता; शिष्टता; नम्रता ।*

जोड़कर) प्रणामयुक्त यह पत्र है । श्रीमान् महाराज के चरण के अतुल प्रताप से यहाँ कुशल है । विषय यह है कि जिन शत्रु-सामन्तों ने हमारी सीमा में आकर भूमि पर अधिकार कर लिया था, उनपर मैंने धावा किया । उन्होंने हमारे अग्रगामी वीरों को बाण की वर्षा से पीछे हटा दिया । तदनन्तर, मैंने जाकर उनके साथ युद्ध किया । युद्ध के समय शत्रु पक्ष के बहुत -से पदाति (पैदल सेना) सगर्व गज-समूह तथा घोड़ों के पदाघात से ही चूर कर दिये गये। युद्धस्थल में रक्त की नदी बह चली । श्रीमान् के प्रताप से मैने विजय पाई । यह बात शुत्रुओं के (कटे हुए) शिरों से ही प्रकट हो जायेगी । हमारी सेना में भी जो योद्धा युद्धक्षेत्र में मारे गये और जो आहत हुए, उनकी सूची लिखकर भेज ही दी गई है । उनके प्रति स्वामी को अपने धर्म के अनुसार सत्कार करना चाहिए । उस कार्य में श्रीमान् महाराज का स्वामी- धर्म ही प्रमाण है, अर्थात् उनके प्रति स्वामी के कर्त्तव्य का निर्णय आपके ही हाथ है । अधिक क्या (लिखूँ ?) ॥८॥

स्वस्ति । प्रबलतर प्रताप -रूपी सूर्य से पराजित शत्रुरूपी अन्धकार को दूर करनेवाले, निर्मल राजनीति- रूपी नदी के कर्णधार, मर्यादा के सुमद्र, युद्ध की सीमा में दुर्वार राजाओं की मुकुटमणि के किरण- समूह से पीताभ चरण -कमलवाले, अपने हृदय में श्रीकृष्ण को स्थापित करनेवाले शत्रु-राजारूपी कंस के लिए कृष्ण के समान, शिव की भक्ति में निरत समरविजयी महाराजाधिराज श्रीमान् अमुक देव के चरण-कमल में अमुक स्थान से सेनापति श्री अमुक का सिंहासन-तल पर मस्तक रखकर प्रणाम -पुरस्सर यह पत्र है । श्रीमान् महाराज के प्रतापोदय से यहाँ कुशल है । विशेष बात यह है कि (आपका) अपने हाथ का लिखा, आया हुआ पत्र शिरोधार्य कर उसके अर्थ को ठीक से समझकर तदनुरूप कार्य कर रहा हूँ। विषय यह है कि श्रीमान् यवनराज अभी गौड़ (देश) के राजा को लक्ष्य बनाकर दिल्ली से युद्धयात्रा पर चल चुके हैं । यह गुप्तचर ने आकर कहा है । गौड़ -अधिपति भी अपने दुर्ग के संशोधन में व्यस्त तथा सेना के संघटन में निरत हैं । युद्ध करेंगे या सन्धि, यह मालूम नहीं । पता लगाकर पीछे लिखूँगा । सम्प्रति जैसा उचित हो, वैसा करने का आदेश दिया जाय । अधिक क्या (लिखूँ ?) ॥९॥

स्वस्ति । प्रचण्ड प्रताप की प्रभा से शत्रुरूपी अन्धकार -समूह के महामहोत्सव को तिरस्कृत करनेवाले, दया[१], दान[२], दाक्षिण्य[३], मर्यादा, विवेक[४] आदि सभी राजगुणों से अलंकृत, धन

---

१. किसी विपन्न के प्रति हृदय में उत्पन्न होनेवाली सहानुभूति का भाव, जो उसका दुःख दूर करने के लिए प्रेरित करे; करुणा; अनुकम्पा; रहम ।

२. दान की व्याख्या करते हुए कौटिल्य ने कहा है कि अनुग्रह (करना) एवं अपने कार्य में लगाना दान है । आभ्यन्तरिक प्रतिजापों के वे साथ वे साम एवं दान -नीति का समर्थन करते हैं (अर्थशास्त्र) ९/५) बृहस्पति द्वारा वर्णित लुब्ध लोग सम्भवतः आभ्यन्तरिक रहे होंगे, जिनके साथ वे साम एवं दाम दोनों के ही प्रयोग का औचित्य स्वीकार करतेहैं (बार्हस्पत्य, राज्यव्यवस्था, पृ० २३७), विद्यापति-कालीन मिथिला में दान का कैसा महत्त्व था, इसके लिए द्रष्टव्य है विद्यापति की 'दानवाक्यावली' ।

३. अनुकूलता; निपुणता; पटुता; उदारता ।

४. यथार्थ ज्ञान; विचार; भले-बुरे की पहचान ।

का वितरण करने के यश से बलि, कर्ण आदि महान् दानी व्यक्तियों को भी जीतनेवाले, धरती के इन्द्र-स्वरूप, अपनी सकल विरुदावली से विराजमान, सैकड़ों संग्राम के जीतनेवाले, महाराजधिराज श्रीमान् अमुक देव के चरण -युगल में अमुक स्थान से सिंहासन-तल पर शिरोनमन के साथ सरदार श्री अमुक का शतश : प्रणामयुक्त यह पत्र है। श्रीचरण के प्रतापोदय से यहाँ कुशल है। विशेष रूप से आपका आया हुआ स्वहस्त-लिखित पत्र सिर पर रखकर मैने अच्छी तरह उसके प्रयोजन को हृदयंगम कर लिया। उजाड़ भूमि में वास के लिए जो आदेश दिया गया है, (सो) श्रीदेवापाद के प्रभु-धर्म (राज्यादेश) को सुनकर विदेश से आकर लोग स्वयं ही बस रहे हैं। लोग तो जहाँ संरक्षण पाते हैं, और जहाँ राजधर्म तथा स्थिरता (शान्ति) देखते हैं, वहीं निवास करते हैं। इसलिए, (उस) देश में लोग बस गये, यह विदित हो। इसमें जो बाधा उत्पन्न करनेवाले देखे गये, वे शत्रु और चोर मेरे ही द्वारा मार डाले गाये। देश -वास में बाधा डालनेवालों को मारने में तेरा तो केवल कौशल मात्र है। उस कार्य का साधक तो श्रीदेवपाद का प्रताप ही है। अधिक क्या ? ॥१०॥

स्वस्ति। परम उदित प्रताप -रूपी सूर्य के सम्पर्क से शत्रु -राजा की करोड़ों सेना की शोभा को नष्ट करनेवाले, निरन्तर धन के दान से सभी विद्वज्जनों के मन को वश में करनेवाले, समस्त प्रक्रिया से विराजमान, सैकड़ों संग्रामों को जीतनेवाले, महाराजाधिराज श्री अमुकदेवसिंह के चरण -कमलों में राजधानी से शान्तिकरणिक [१] श्री अमुक दत्त का शुभकामना -पूर्वक यह विज्ञापन पत्र है। श्रीमान् के प्रतापोदय से यहाँ कुशल है। चतुरंग से युक्त श्रीदेवपाद का वहाँ का कुशल चाहता हूँ। विदित्त हो कि यहाँ वरण किये गये ब्रह्मपुर के ब्राह्मण अग्निहोता [२] श्री (अमुक) आवसथिक [३] श्री अमुक शुक्ल, श्री अमुक मिश्र, श्री अमुक महामहोपाध्याय, श्री अमुक प्रभृति दुर्गापाठ, मन्त्रजप और नवग्रह होम कर रहे हैं। चतुर्वेदी श्री अमुक त्रिपाठी, श्री अमुक द्विवेदी, श्री अमुक प्रभृति घनपाठ [४], जप, सामगान और संहिता [५], पाठ कर रहे हैं। इससे शत्रु पर विजय की कामना रखनेवाले श्रीचरण की शुभ -यात्रा के दिन से ही अच्छी तहर शान्ति -पाठ हो रहा है, यह विदित हो। हम आशा करते हैं कि संग्राम जीतकर, शत्रु -राजा को पराजित कर, शत्रु का धन लेकर, शत्रु -राज्य पर अधिकार कर स्वामी भी यहाँ शीघ्र आयेंगे। आप शीघ्र आकर दक्षिणा -स्वरूप सोना से इस द्विज -मण्डली की पूजा करें ॥११॥

स्वस्ति। सन्धि[६], विग्रह[७], यान[८] आसन [९], द्वैधीभाव [१०], तथा संश्रय [११] इन छह गुणों

---

१. *राज्य में शान्ति स्थापना करनेवाले, राज्यधिकारी को 'शान्तिकरणिक' कहा जाता था। वे राज्य की विघ्न -बाधा को दूर करने के लिए नैष्ठिक ब्राह्मणों से यज्ञ, होम, जप आदि कराते थे।*

२. *नियमपूर्वक प्रत्येक दिन अग्नि में हवन करनेवाला।*

३. *कुटी बनाकर रहनेवाला, अर्थात् एक प्रकार का संन्यासी।*

४. *वेदमन्त्र के पाठ की विशेष विधि।*

५. *वेद के मन्त्रभाग को संहिता कहते है।*

६. *नीतिवाक्यामृत, हरिबलीय टीका, पन्नालाल सोनी, बम्बई १९२२, पृ०३३०- ३३७; बार्हस्पत्य राज्यव्यवस्था, पृ० २२६; बृहस्पति सन्धि के कई प्रकार मानते हैं। उनके अनुसार शक्तिशाली सीमाधिप से हुई सन्धि, शत्रु से आत्मरक्षा के लिए की गई मित्रराष्ट्र से सन्धि, युद्ध के पश्चात*

से युक्त, चातुर्य में ब्रह्मा के समान, प्रचण्ड दण्नीति से सभी दुर्वृत्तों के प्रभाव का निराकरण करनेवाले, स्थायी त्रिवर्ग (धर्म,अर्थ, काम) के अर्जन में सावधान मतिवाले, राजकोष के संरक्षण-संवर्द्धन में पटु, बुद्धि -वैभववाले , वाणी की मधुरता, कार्य की कठोरता, परामर्श, परिच्छेद, शत्रुपक्ष का विभेद (शत्रुपक्ष के भेद जानना) तथा वर्त्तमान कर्त्तव्य में सावधान, समस्त प्रक्रियाओं से विराजमान, महामहत्तक ठाकुर श्री अमुक महानुभाव के युगल चरण- कमल में अमुक ग्राम

शत्रु से हुई सन्धि आदि सन्धि के विभिन्न प्रकार थे। इस प्रकार, बृहस्पति शक्तितशाली, शक्तिहीन शत्रु तथा मित्र से हुई सन्धि को वैध मानते हैं। अर्थशास्त्र ७।१: 'पणबन्धः सन्धिः' अर्थात् कौटिल्य का मत है कि पणबन्ध सन्धि हैं। डॉ० राधागोविन्द बसाक इसकी टीका करते हुए कहते हैं कि सन्धि एक समय शर्त्तनामा) है, जिसके द्वारा दो राजा प्रदेशें के समर्पण या प्रतिरूप, धन और सैन्य के लिए तैयार हो जाते हैं (Inter National Law and Inter State Relations in Ancient India, That is to say treaty is an agreement between two kings for mutual surrender or exchange of teritories, money and army.) कौटिल्य ने सन्धि की अवस्थाओं के बारे में अपने पूर्ववर्त्तियों की विचार-धारा का उल्लेख किया है। उनके मतानुसार शक्तिशाली शत्रु से, युद्ध के समय प्रभावहीन होने की अवस्था में दोनों के युद्ध में समान क्षय की सम्भावना होने पर सन्धि कर लेनी चाहिए। नीतिवाक्यांमृत,पृ० ३२३, ३३३-३१; बृहस्पति भी शक्तिशाली शत्रु तथा समशक्ति शत्रु से सन्धि कर लेने के पक्षपाती हैं। उपाय-त्रय (साम, दाग, दण्ड) से सम्पन्न राजा को भी वे मन्त्रणा देते हैं कि समान से सन्धि कर लेनी चाहिए। क्योंकि, अन्योन्याहित (दो घड़े की भाँति आपस में टकराने से) का अर्थ दोनों का नाश होता है। अर्थशास्त्र, ७ :१, 'नैतद्विभाषितम् इति कौटिल्य :' अर्थात कौटिल्य उपर्युक्त मत से सहमत नहीं हैं। उनका कथन है कि यह नीतिपूर्ण नहीं है। सन्धि को कौटिल्य अपने कार्यों के लाभ और अपने प्रयत्नों द्वारा शत्रु को हानि पहुँचाने का माध्यम मानते हैं। वे आत्मरक्षा, शक्विृद्धि, शत्रुहानि और शत्रुनाश के आदर्श पर आधारित सन्धि के पक्षपाती हैं। विस्तृत वर्णन के लिए देखिए, बार्हस्पत्य : राज्य-व्यवस्था, पृ० २२६-२२९। चण्डेश्वर : राजनीतिरत्नाकर, पृ०५६: 'सन्धिमेकीभवननिबन्धम्' ।

७. *साधारणतया विग्रह शब्द युद्ध के लिए प्रयुक्त होता है; किन्तु कौटिल्य एवं शुक्र इसे भी राजनीतिक चाल मानते हैं (अर्थशास्त्र, ७।१)। कामन्दक का स्पष्ट कथन है कि अमर्ष द्वारा वशीभूत होकर तथा क्रोध से सन्तप्त होकर परस्पर अपकार में लग जाना विग्रह है (ज्वालाप्रसाद मिश्र) : कामन्दकी नीतिसार, बम्बई १९२०, पृ० १०।१। शुक्र विशेष रूप से पीडित शत्रु को अपनी ओर लाने की प्रक्रिया को विग्रह मानते हैं (शुक्रनीतिसार : मिहिरचनद्र, बम्बई, १९०९, ४।१०६७) ; अमरकोश के अनुसार, शत्रु -मणडल को अपने स्थान से पृथक् होकर ग्रसित करना विग्रह है ; – अमकोश : अमरसिंह, सतीशचन्द्र बिद्याभूषण, कलकत्ता १७०१,पृ० २९४, श्लोक २२;*
विस्तारो विग्रहो व्यासः स च शब्दस्य विस्तरः ।
स्यान्र्मदनं संवाहनं विनाशः विनाशः स्याददर्शनम् ॥
कुछ विद्वानों का कहना है कि संस्कृत में वि शब्द विशिष्ट तथा विकृत भावों के लिए ही नहीं प्रयुक्त होता, वरन् विष्णु के वाहन गरूड के लिए भी प्रयुक्त होता है। सम्भवतः, गरुड और सर्पो का युद्ध तथा गरुड द्वारा सर्पो का संहार इस भावना की पृष्ठभूमि रहा है। यदि इसे स्वीकार किया जाय, तो यह भावना होगी कि जिस प्रकार,गरुड अपने क्रम अथवा पंजे से सर्पो को ग्रहण

करता था, उसी भाँति विजिगीषु द्वारा शत्रु -राजा को घेरना, पीड़ित करना एवं नष्ट करना, सभी कार्य विग्रह होंगे । यही नहीं, इस प्रकार के विग्रह के लिए विजिगीषु का शक्ति -सम्पन्न होना भी अनिवार्य है (जार्ज अमेरिकानों, दि न्यू फाउणडेशरन ऑव इण्टरनेशनल लॉ, न्यूआर्क १।९४७, पृ० ३२-४३) ; आधुनिक कूटनीति की भाषा में भी युद्ध तथा उससे सम्बद्ध अन्य कार्यों की प्रयुक्त परिभाषाएँ बार्हस्पत्य राज्व्यवस्था से लेकर कर्णाट और ओइनवार-राज्व्यवस्था तक में प्रयुक्त विग्रह शब्द के सन्निकट प्रतीत होती हैं । कारण, चण्डेश्वर स्पष्ट रूप से कहते हैं कि – 'विग्रहमपकारम्', अर्थात् एक दूसरे को हानि पहुँचाना है (राजनीतिरत्नाकर, पृ०५६)।

बृहस्पति विग्रह की स्थिति के पश्चात् अपनी शक्ति के महत्त्व को तौलने के बाद युद्ध के लिए अभियान करने की मन्त्रणा देते हैं । वे इस शब्द के लिए निर्गम (बृहस्पतिस्मृति : प्रो० के० वी० रंगस्वामी आयंगर, गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज, ८५ बड़ौदा, १९४१, पृ० २६३) शब्द का व्यवहार करते हैं, किन्तु परवर्त्ती अर्थशास्त्रियों ने यान शब्द का ही प्रयोग किया है (अर्थशास्त्र ७।१); कौटिल्य का कथन है कि विजिगीषु राजा समझ ले कि शत्रु के कार्यों का नाश उसपर आक्रमण करके ही हो सकता है और अपने राज्य की रक्षा का समुचित प्रबन्ध करना है, तो यान-गुण का आश्रय ले (अर्थशास्त्र ७।१, 'गुणातिशयुयुक्तो यायात्') ; । शुक्र भी यान-गुण का महत्त्व स्वीकार करते हुए उसके विगृह्य, संधाय, संभूय, प्रसज्य, उपेक्ष्य आदि विभेदों को मान्यता प्रदान करते हैं (शुक्रनीतिसार, ४।१०८७-१०९२); ।चण्डेश्वर ने भी कहा है कि 'शत्रु प्रति गमनं यानम्', अर्थात् शत्रु पर आक्रमण करना यान है; (राजनीतिरत्नाकर, पृ०५६ ।

९. कूटनीतिक क्षेत्रों में शान्तिपूर्ण व्यवहार की नीति के लिए बृहस्पति ने स्थान शब्द का व्यवहार किया है । कौटिल्य आदि अन्य अर्थशास्त्री इस स्थिति की द्योतन के लिए आसन शब्द का प्रयोग करते हैं (अर्थशास्त्र, ७।१, 'उपेक्षणमासनम्'); राजनीतिरत्नाकर, पृ० ५६ ।

१०. कौटिल्य इस अवस्था में द्वैधीभाव को मान्यता प्रदान करते हैं, जब शासक को यह प्रतीत हो कि एक शत्रु से युद्ध करने के निमित्त अन्य से सन्धि करके शत्रु के कार्यों को नष्ट कर सकूँगा । यदि ऐसा प्रतीत हो, तो द्वैधीभाव से अपनी वृद्धि करे (अर्थशास्त्र ७।१)। शुक्र के मातानुसार द्वैधीभाव का अर्थ शत्रु तथा मित्र-सेना पर समान रूप से अपनी सेनानियुक्त करना है ,शुक्रनीति, ४।१०७; राजनीतिरत्नाकर, पृ०५६।

११. शक्तिशाली शत्रु से अपनी रक्षा के निमित्त बृहस्पति संश्रय ग्रहण करने की आज्ञा देते हैं :

स्याद्यदा शक्तिहीनस्तु विजिगीषुहि वैरिणः ।
संश्रयीत तदा चान्यं बलाय व्यसनच्युतात् ॥

संश्रय का महत्त्व स्पष्ट करते हुए कौटिल्य का कथन है कि जब विजिगीषु को प्रतीत हो कि वह शत्रु के कार्यों हो हानि नहीं पहुँचा सकेगा और अपने कार्यों की रक्षा नहीं कर पायगा, तब आश्रय लेकर अपने ,कार्यों को क्षणिक क्षय पहुँचाकर स्थान तथा स्थान के पश्चात् वृद्धि की कामना करे । कौटिल्य विशेष बलवान् राजा के साथ संश्रय-मैत्री के पक्षपाती नहीं । उसे वे अनिष्टकर मानते हैं; किन्तु यदि बलवान् शत्रु से युद्ध हो रहा हो, तो उन्हें बलवान् के संश्रय में कोई हानि नहीं प्रतीत होती (अर्थशास्त्र,७।२); राजनीतिरत्नाकर, पृ० ५६: 'प्रबलनृपाश्रयं संश्रय,' अर्थात् शक्तिशाली राजा का आश्रय ग्रहण करना संश्रय है ।

से कार्यी[1] श्री अमुक का भृंगायमान सिर के साथ साष्टांग प्रणतिपूर्वक पत्र है। आये हुए पत्र का प्रयोजन ज्ञात हुआ। इस देश में जहाँ-जहाँ राजस्व था, वहाँ-वहाँ से लेकर हमलोगों ने श्रीमान् को विदित कराते हुए राजकोष में रख दिया। जो -जो दानपत्र आये, उन सबको प्रमाणित कर सरदार के पदाति (पैदल सेना) को दे दिया। जहाँ कुछ-कुछ अवशिष्ट है, उसके स्थान का पता नहीं है। वह मरे हुए, भागे हुए तथा ऐसे ही लोगों के पास पड़ा है। अतः, जानकारी के लिए सूचना आकर ही दूँगा। वहाँ भी जो दो हजार मुद्राएँ प्राप्त हुई, उन्हें अमुक के द्वारा भेज दिया है। वहाँ मुद्रा २,०००। भेजे गये विश्वासी दूत के द्वारा ही सन्देश की वस्तुएँ भी प्राप्त होंगी। इति ॥१२॥

स्वस्ति। राजदरबार में देख-भाल करनेवाला, राजनीति के पाण्डित्य से मण्डित, धर्मरक्षा -पूर्वक राजकाज (करने) की चतुराई में चाणक्य (के समान), सभी प्रक्रियाओं से युक्त, महासामन्ताधिपति महामहत्तक ठाकुर श्री अमुक महाशय के चरण -कमलों में अमुक जनपद से जेठरैयत श्री अमुक का अष्टांग प्रणाम- पूर्वक यह पत्र है। विशेष (समाचार यह) है कि यहाँ के तहसीलदार बीते वर्ष के रजिस्टर के अनुसार रैयत से कर माँगते हैं। यहाँ किसी गाँव में आबादी है (और) कोई गाँव उजाड़ ही है। सो, यदि इस बर्ष इस जगह जमीन की नाप करके मालजुजारी ली जाय, तो मालगुजारी का पैसा पूरा -का -पूरा मिल सकता है (और) गरीबों को तकलीफ भी नहीं होगी। (लेकिन) यह तो राजा की आज्ञा के विना अधिकारी कर नहीं सकता है, इसलिए साफ बतला दिया। अतः, जैसा करना पड़ेगा, वैसा आदेश देंगे। और क्या (लिखूँ ?)॥१३॥

स्वस्ति। बहुत बड़े देख-भाल करनेवाले, दण्ड,[2] भेद,[3] साम[4], (और) दान (इन) चार साधनों

---

१. *मनुस्मृति ८/२ : 'विनीतवेषाभरणः पश्येत्कार्याणि कर्यिनाम्', अर्थात विनीत वेश बनाये हुए कार्यो सब कार्य करनेवाले के कार्यो को देखे। कार्यो का तो शाब्दिक अर्थ यही हुआ, लेकिन विद्यापतिकालीन मिथिलाधिपति के यहाँ लगान (कर) वसूल करनेवाले के कार्य का निरीक्षण करनेवाले को 'कार्यी' कहा जता था।*

२. *बृहस्पति चार उपायों में दण्ड को एक मानते थे, फिर भी वे दणडनीति के प्रयोग के समर्थक नहीं थे। सम्भवतः , यही कारण है कि बार्हस्पत्य अंशों में दणड के वर्णन नहीं मिलते। कौटिल्य ने बाह्य प्रतिजापित एवं उपजापित शत्रुओं के लिए दण्ड का समर्थन किया था। (अर्थशास्त्र, ९/५)। राजनीतिरत्नाकर पृ० ५७ : 'वधपर्य्यन्तोऽपकारो दण्डः'। विस्तृत वर्णन के लिए देखिए,वामन शिवराम आप्टेः संस्कृत -हिन्दीकोश ,पृ० ४४५-४६।*

३. *बृहस्पति शंकितों (बर्हस्पत्यसूत्र , ५/५), लोभियों (वही, ५/७) तथा कष्टदायी (वही,५/७) शत्रुओं के साथ भेदनीति के प्रयोग के समर्थक हैं। प्रतिजापित एवं उपजापित शत्रुओं के साथ कौटिल्य भी भेदनीति के प्रयोग का समर्थन करते हैं (अर्थशास्त्र, ९/५); संस्कृत हिन्दीकोश, पृ० ७५२-५३; राजनीतिलाकर, पृ० ५७: 'भेदो भेदनम्'।*

४. *साम शब्द की परिभाषा करते हुए कौटिल्य स्थान (अर्थात् महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान करने) तथा मान (अर्थात् विशेष समादर) को महत्त्व प्रदान करते हैं (अर्थशास्त्र ९/५) ; बृहस्पति आन्तरिक नीति में साम के समर्थक के रूप में प्रीतिपूर्ण वाणी बोलने तथा लोकाचार के विरूद्ध कार्य न करने की मन्त्रणा देते हैं (बार्हस्पत्यसूत्र, ५/१६); चणडेश्वर का मत है – 'साम प्रियभाषणम्' (राजनीतिरत्नाकर, पृ०५७)।*

की चतुराई से प्रसिद्ध बुद्धिवाले, प्रभाव,उत्साह (और) मन्त्रणा - इन तीनों शक्तियों के विश्राम के लिए वृक्ष (के सामन), राज्य की रक्षा, (उसमें होनेवाले सत् और असत् के) विवेचन (और उसके) उत्कर्ष के विधायक, सारी प्रक्रियाओं से युक्त, महासान्धिविग्रहिक ठाकुर श्री अमुकेश्वर महाशय को अमुक गाँव से सामन्त श्री अमुक की अष्टांग प्रणाम -पूर्वक यह चिट्ठी है। यहाँ कुशल है और मैंने सुना है (कि मेरे ऊपर राजा क्रुद्ध हो गये है। यद्यपि (मैं) क्रुद्ध होने का कारण नहीं जानता हूँ, तथापि राजा का चरित्र दुर्बोधि होता है, इसलिए उनके बिगड़ने की बात सुनकर (मेरा) मन भय से बेचैन है (और) आने में डरता हूँ। इसलिए, यदि (मेरे अनजाने अपराध के) निबटारे के लिए राजा का पत्र (और) अपना भी पत्र भेजें, तो निःशङ्क होकर (मैं) वहाँ आऊँगा। और क्या (लिखूँ ?) ॥१४॥

स्वस्ति। राजदरबार में शौर्य, धैर्य, मर्यादा, विवेक, विचार, परमोपकार, धर्म की रक्षा करते हुए राजकाज में कठोरता आदि सभी शिष्ट गुणों से अलंकृत; अपनी ओर (तथा) शत्रु की ओर के वृत्तान्त के ज्ञान, समय पर करणीय (कर्म) में मनोयोग, कर्त्तव्य तथा अकर्त्तव्य (कर्म) में (उत्पन्न) सन्देह को दूर करने तथा कोष बढ़ाने (खजाना भरने) की शक्ति आदि मन्त्रियो की (योग्य), मन्त्रणा की कुशल परिपाटी में निपुण व्यापारवाले, (इसी प्रकार) और भी प्रक्रियाओं से युक्त सान्धिविग्रहिक ठाकुर श्री अमुक स्वामी के चरण -कमलों में अमुक गाँव से सेनापति श्री अमुक की अष्टांग प्रणाम-पूर्वक यह चिट्ठी है। आपके प्रताप के उदय से यहाँ कुशल हैं। काम (यह) है कि सरदारों (और) सिपाहियों के संगठन के लिए श्रीमान् राजा साहब और आपने जो मुझे यहाँ भेजा, सो मैंने अपने यहाँ की (और) बाहर की (भी) कई लड़ाईयों में प्रशंसा पाई, तरह-तरह के हथियार चलाने में अभ्यस्त, शूर, खानदानी, स्वामिभक्त, (अपने) सम्प्रदाय के सुरुकि, चौहान, चन्देल आदि को मीठी-मीठी बातों (से) फुसलाकर, (तरह-तरह का) भरोसा देकर अनुरक्त कर लिया है (अपनी ओर कर लिया है)। ये भी श्रीमान् राजा साहब के और आपके विवेक, विचार और अपने आश्रितों के ऊपर अपार स्नेह को सुनकर वहाँ आने को तैयार हैं। यदि इनके रूप-गौरव की रक्षा करते हुए उचित वेतन का निर्धारण हो, मुझ सेवक की बात न टाली जाय, तो इन्हें लेकर (मैं) वहाँ (आ) जाऊँ। इनके वहाँ जाने से अपने पक्ष की उन्नति और शत्रु -पक्ष की हानि हो सकती है। सो, इस (बिषय) में निश्चय करने के लिए (इस पत्र को) देखिएगा (अर्थात् इस पत्र के ऊपर ध्यान दीजिएगा)। और क्या (लिखूँ ?) ॥१५॥

स्वस्ति। अमुक नदी के किनारे टिकी हुई सेना में शासक सेनापति के रूप में वर्त्तमान, (अपने) प्रताप के उदय से सारे दिङ्मण्डल को प्रकाशित करनेवाले, अनेक राजाओं के समूह के माथे के मुकुट की मणियों के प्रकाश से भासित चरण -कमलवाले, सभी (राजोचित) प्रक्रियाओं से युक्त श्रीअमुक राजा के चरणों में राजधानी से सभी प्रक्रियाओं से युक्त, महासामन्ताधिपति, महामहत्तक ठाकुर श्री अमुक शर्मा की शुभाशीर्वाद-पूर्वक यह सविनय निवेदन की चिट्ठी है। आपके प्रताप के उदय से यहाँ कुशल है। हाथी, घोड़ा (रथ और) पैदल –(इन) चारों अंगों से युक्त आपके यहाँ का कुशल चाहते हैं। काम यह है कि जबसे आपने यहाँ से प्रस्थान किया,

तबसे सम्पूर्ण राज्य का काम आपके पुण्य के प्रताप से अच्छी तरह चल रहा है । जो अधिकारी खजाना चुकाने के लिए और जो अपराधी जुरमाना चुकाने के लिए जेल में डाल दिये गये हैं, योग्यतानुसार जुरमाना उन्होंने दे ही दिया है । अब वे दरिद्र हो गये हैं, पीड़ा या कष्ट पाकर भी कुछ दे नहीं सकते हैं, (अब अधिक वसूल करने से वे) मर जायेंगे । इसलिए, यदि कृपा करके आज्ञा दें अथवा अनुग्रह करें , तो इनकी देय वस्तु (चुकाने के पैसे)– की अवधि निर्धारित कर दी जाय । अवधि निर्धारित करने पर (तारीख मुकर्रर कर देने पर) जामिन लेंगे ! बेड़ी (हाजत) से इन्हें छोड़ देंगे, तो कुछ धन का लाभ भी होगा, (और) जीवहिंसा भी नहीं होगी। इसलिए, हमने सूचित कर दिया है । राजधर्म के अनुसार जो उचित हो सो लिखने का (फरमान जारी करने का) आदेश देंगे । प्रेषित चीजें पत्र के अनुसार (लिखे मुताबिक) भेजे गये आदमी के द्वारा मिलेंगी ही । इति ॥१६॥

स्वस्ति । धार्मिक सन्देह के निर्णायक, बजक्कर बादी के नियंत्रण में बद्धपरिकर, सज्जनों को आनन्द देनेवाले, वेदान्त के सिद्धान्त से विशुद्ध अन्तः करणवाले, धोखाघड़ी की चातुरी - रूपी अन्धकार के लिए सूर्य-किरण (के समान), सप्रक्रिय मुख्य न्यायाधीश ठाकुर श्रीअमुकेश्वर के चरणों में अमुक गाँव से श्री अमुकेश्वर की, बहुविनय के साथ यह नमस्कार की चिट्ठी है। यहाँ कुशल है । काम (यह) है कि यद्यपि आप धर्म के लिए ही सम दृष्टि से विचार करते हैं - न द्वेष करते हैं और न पक्षपात करते हैं, तथापि वादी और प्रतिवादी अमुक -अमुक शर्मा जा रहे हैं । प्रमाण के साथ इनके मुकदमे का विचार करके जीतनेवाले को डिगरी दे दीजिएगा। और क्या(लिखूँ ?) इति ॥१७॥

स्वस्ति । स्वर (और) वर्ण की सीमा में आबद्ध मन्त्रों के पाठ (करने) में चतुर, सुप्रसिद्ध (तथा) वर्णन करने योग्य गुणों से युक्त, यज्ञ के साथ (दूसरे) क्रिया-कलाप के क्रम में सावधान, शास्त्रविहित सिद्धान्त के विद्धान्,प्रतिष्ठित पुरोहित महामहोपाध्याय श्रीअमुक शर्मा के चरणों में अमुक गाँव से श्री अमुक शर्मा की सैकड़ां विनय को(अपने) साथ ले चलनेवाली यह नमस्कार की चिट्ठी है । आपके शुभाशंसन (मंगल-वचन) से यहाँ कुशल है । वहाँ का कुशल चाहते हैं। काम (यह) है कि सम्प्रति आप राजपुरोहित के पद पर विराजमान हैं । इस समय पढ़े -लिखो बुद्धिमान् मेरे दोंनों लड़के राजमहल में याचन्ना के लिए गये हुए हैं । सो, इन दोनों के गुण, आचरण और कुल-शील की परीक्षा लेकर उचित भिक्षा दिला दीजिएगा । इसमें हमलोगों का निकट सम्बन्ध सफल होगा । और क्या (लिखूँ ?) ॥१८॥

श्रीविद्यापति -रचित लिखनावली में उच्चैः कक्ष- परिपाटी नाम की पहली अनुक्रमणिका समाप्त हुई ।

निम्न वर्ग के लिए लेखन की पद्धति

स्वस्ति । अमुक नगर से कोषमुक्त खड्ग,रेशमी मुकुट, सिंहासन, श्वेत छत्र, श्वेत चामर आदि समस्त (राजोचित) प्रक्रियाओं से देदीप्यमान, राजाओं के मुकुट में गुँथी मणियों की किरणों से आरक्त नख - द्युतिवाले ,रिपुराज-रूपी हाथी के लिए सिंह(के समान),अपनी कीर्त्ति -रूपी

चाँदनी से कुमुद-वन को खिलानेवाले, इसी प्रकार और भी अनेक उपाधियों से युक्त, समरविजयी, पूज्यपाद महाराजाधिराज श्रीअमुक सिंह अत्यन्त उज्ज्वल चरित्रवाले राजा श्रीअमुक को फरमाते हैं इस समय तुम, जिस तरह (काम) करना चाहिए, उस तरह सेवा नहीं करते हो, जिस तरह देना चाहिए, उस तरह खजाना नहीं देते हो, लापरवाही करते हो। यह क्या ? अब भी यदि अपनी भलाई चाहते हो, तो हर साल भरपाई करनेवाला खिराज खजाने में भेजा करो, सेवा के लिए अपने लड़के या भाई को पूरी फौज के साथ भेजो। यदि ऐसा नहीं करोगे, तो जहाँ जीओ, वहाँ जाओ। नहीं तो चढ़ाई करके हाथियों, घोड़ों और पैदलों के पैरों की ठोकरों से तुम्हारे गढ़ को चूर-चूर कर तुम्हें करोड़ो रणकुशल योद्धाओं के बाण -प्रयोग (बाण के निशाने) से बहुत जल्द यमपुर भेज देंगे। इति ॥१९॥

स्वस्ति। अमुक नदी के तट पर टिकी फौज से (अपने) प्रचण्ड प्रताप -रूपी सूर्य से सारे वैरी राजाओं के बल को तपानेवाले, मर्यादा के समुद्र, नीति में निष्णात (अपने) व्यवहार से कामिनियों के गले का हार, रिपुराज- रूपी दैत्य के लिए नारायण (स्वरूप), श्रीकृष्ण - विषयक वार्त्तालाप में निरत, शरणागत के संरक्षण में वज्रपिञ्जर (के समान कठोर), लड़ाई के मैदान में अड़ने (टस से मस नहीं होने) की योग्यता में हाथी से स्पर्द्धा करनेवाले (हाथी को चुनौती देनेवाले), समस्त (राजोचित) प्रक्रियाओं से युक्त, समरविजयी महाराजाधिराज श्रीअमुक देवपाद राजा श्रीअमुक को सन्देश भेजते हैं। (सम्प्रति तुम) शुद्ध मन से मेरी सेवा नहीं करते हो (और) न अपने विभव के अनुरूप खिराज देते हो। इसलिए, हमने चढ़ाई की है। अब भी यदि अपनी भलाई चाहते हो, तो दस हाथी,. पचास लाख धन (मुद्रा) (और) सौ घोड़े भेजो। यदि ऐसा नहीं करते हो, तो हम आ ही रहे हैं। तुम जहाँ जी सको, वहाँ पहाड़ी किले के बीच जाकर आश्रय लो (अथवा) सुलह करो ॥२०॥

स्वस्ति। न्यायालय से सभी प्रक्रियाओं से युक्त प्रधान न्यायाधीश राजा (राउत्त) श्रीअमुक को आदेश देते हैं। यहाँ महामहोपाध्याय श्रीदेवदत्त ने पिछले नौकर के मुकदमे चार प्राणी दासियों को जबरदस्ती पकड़ लिया। इसलिए, हरजाने के साथ (उन्हें वापस कर) दें। इसी मतलब की भाषा में आपने झूठा बयान दिया था। मुद्दई के झूठे बयान पर मुद्दालह की और सबूत की खोज करने पर उसने गरजमन्द अमुक-अमुक शर्मा को गवाह के रूप में पेश किया। आपने भी स्वीकार कर लिया। उन दोनों को लेकर इस समय मुद्दई नियत तारीख पर यहाँ उपस्थित है। यह समझकर आप यहाँ आकर गवाहों का बयान सुनेंगे। यदि नहीं आयेंगे, तो प्रमाणोचित (अर्थात् इसी प्रमाण के बल पर) ही आपकी पराजय हो जायगी। इसलिए, आप शीघ्र यहाँ आयेंगे ॥२१॥

स्वस्ति। दरबार से सारी प्रक्रियाओं से युक्त महासामन्ताधिपति; महामहत्तक ठाकुर श्री अमुकेश्वर महानुभाव चौधरी श्रीअमुक को सन्देश भेजते हैं -इस राज्य में सभी अधिकारियों ने अपने-अपने मुल्क की मालगुजारी का पैसा भेज दिया, (किन्तु) पूरे-के पूरे तुम्हारे मुल्क में मालगुजारी का बहुत -सा धन बाकी है। सो (बाकी) धन क्यों नहीं भेजते हो ? काम करनेवाले पुरूष के काम करने की चतुराई का फल धन है। यदि धन नहीं आता है, तो चतुराई कहाँ

या अपनापन कहाँ ? यदि तुमने उस मुल्क का सारा धन खजाने में जहाज (और) डाक से भेज नहीं दिया है और बाकी नहीं है, तो बही (रजिस्टर) के साथ आकर हिसाब -किताब कर लो ॥२२॥

(स्वस्ति) अमुक राजधानी से सारी प्रक्रियाओं से युक्त महासामन्ताधिपति महामहत्तक ठाकुर श्रीअमुक महाशय मुंशी श्रीअमुक को सन्देश भेजते हैं – अमुक परगने की बाकी मालगुजारी की जाँच -पड़ताल करने के लिए आप गये थे । वहाँ (आपने) आजतक क्या किया है – यह लिखकर भेजिएगा । चौधरी का लिया, खाया (और) भुलाया (तथा) पंजीकार की लापरवाही से चौपट कर दी गई (माल-गुजारी) को (उस) मुल्क में प्राप्त प्रमाण के अनुसार जोड़कर समझ लीजिएगा । फिर, उस बही को और अधिकारी की बही को भी लेकर यहाँ आइएगा । इससे यहाँ दरबार में ही अपने मुल्क की बही के ढ़ेर में जाँच- पड़ताल करके पावने की वसूली की जायगी । इति ॥२३॥

स्वस्ति । समस्त प्रक्रिया से विराजमान महामहत्तक ठाकुर श्रीअमुक महाशय चाढ़ श्रीअमुक को आदेश देते हैं । आये हुए पत्र का अर्थ समझा । तुमने रास्ते में चलनेवाले निरपराध साधुओं के धन और प्राण लिये हैं । इसलिए, तुम्हारे ऊपर श्रीमहाराज क्रुद्ध हैं । राजा स्वभाव से ही दस्यु के द्वेषी हैं । मैंने सुना है कि उसी भय से तुम बहुत दिनों से वन-वन भटक रहे हो, तुम्हारा ग्राम उजाड़ हो गया है इत्यादि । हमलोगों ने, करुणा से, उपयुक्त अवसर पर श्रीमहाराज के चरणों में यह निवेदित किया । तब उस अवसर के प्रभाव से, हमारे प्रयत्न से तथा (राज की) अपनी उदारता से श्रीमहाराज ने तुम्हारे पूर्व अपराध को क्षमा कर दिया । (इस आशय का) यह राजपत्र जा ही रहा है । जिससे आगे इस प्रकार के दुराचार का निवारण कर सको । इस राजपत्र को शिरोधार्य कर,लोगों को बसाकर, परिवार को गाँव में रख तुम यहाँ आ जाना । इति ॥२४॥

स्वस्ति । राजदरबार से, समस्त प्रक्रिया से विराजमान महामहमत्तक ठाकुर श्री अमुक महाशय स्थानास्थानक [1] श्री अमुक को यह संवाद देते हैं । यहाँ सुना कि नगरपति के घर में जिस चोर ने चोरी की थी, वह चुराई हुई वस्तु के साथ वहाँ है । यदि यह बात है, तो उस चोर को जंजीर से बाँधकर उस वस्तु के साथ भेज देना । तुम इस कार्य में) अन्यथा नहीं करना ॥२५॥

स्वस्ति । श्रीकरण से, सभी प्रक्रियाओं से युक्त महासान्धिविग्रहिक ठाकुर श्री अमुक महाशय स्थानान्तरिक श्री अमुक को आदेश देते हैं – आये हुए पत्र का अर्थ समझा । शुत्रु -राज्य के

---

१ *विंघापतिकालीन मिथिला में राजा के यहाँ सम्पूर्ण राज्य की उचित, अनुचित कार्यों की देख-भाल करनेवाले अधिकारी-विशेष को 'स्थानास्थानक' कहा जाता था । ज्योतिरीश्वरकालीन मिथिला में भी राजा के यहाँ 'स्थानास्थानक' रहते थे (वर्णरत्नाकर, पृ०८) ।*

दुर्ग से राउत पैदल सेना -सहित परम योग्य सेनापति श्री अमुक आकर मिल गये हैं। यह आपने लिखा है। उसके अनुरूप उन्हें आश्वासन, वासस्थान एवं योग्य भोजन देंगे। तब अपने समाज के साथ उन्हें यहाँ ले आयेंगे। यहाँ श्रीमान् माहाराज उपयुक्त वस्त्राभूषण, घोड़े आदि से उनका सत्कार करेंगे। आपके समाज के साथ यहाँ आये हुए उनलोगों को योग्य जीविका देगें तथा उनके अनुरूप उत्तम ग्राम देंगे। इस कार्य के लिए राज्यादेश-पत्र जा ही रहा है। उस पत्र को शिरोधार्य कर परम सौमनस्य से उसका अनुगमन करना है ॥२६॥

श्री अमुक राजधानी से , अपने हाथ में धारण किये हुए प्रचण्ड धनुष -श्रेणी से विशाल सेना के वीरों के खण्ड -खण्ड किये हुए शिरों के रक्त की बही हुई नदी की तरंग से उदित प्रताप रूपी सुर्य के सम्पर्क से सभी शत्रुकुल-रूपी कुमुदवन को म्लान कर देनेवाले, शत्रु के गज -समूह को विघटित करने में सिंह के समान, अनेक प्रकार के धन -दान के कार्य से दुःखी व्यक्तियों के दारिद्र्य को दूर करनेवाले, सभी लोगों के मन को रंजित करनेंवाले, आदि समस्त प्रक्रिया से विराजमान समरविजयी श्री अमुकदेवपाद अमुक परगने में अमुक ग्रामवासी सभी प्रजा को आदेश देते हैं। आपलोगों को विदित हो कि हमने देवादि भूमि को छोड़ यह गॉव महामहोपाध्याय श्री अमुक को ब्रह्मोत्तर के रूप में दे दिया है। अमुक ग्राम की व्यवस्था ब्रह्मोत्तर

"सभी दानों का एक जन्म की गति ही फल होता है। पृथ्वी, सोना और गौरी (अष्टवर्षा) के दान का सात जन्मों तक फल मिलता है। जो भूमि दान में लेते हैं और जो भूमि का दान देते हैं, वे दोनों ही पुण्य कर्म करनेवाले निश्चित रूप से स्वर्ग जाते हैं। जो स्वयं दी हुई अथवा दूसरों के द्वारा दान में दी हुई पृथ्वी को छीनते हैं, वे अपने पितर के साथ विष्ठा का कीड़ा बनकर दुःख पाते हैं।" इन वाक्यों के अनुसार इनके आदेश से वास तथा चास (कृषि-भूमि) करेंगे और देय द्रव्य आदि देंगे ॥२७॥

स्वस्ति । अमुक राजधानी से, शूरता, यश, प्रताप, मर्यादा, विवेक आदि अनेक गुणों से इन्द्र के समान, शरतकालीन निर्मल चन्द्रमा के समान, (अपने) मुखमण्डल के अनुगत जनरूपी पक्षी के विश्राम के लिए वन के समान, शत्रुओं के गज-समूह के विनाश में सिंह के समान, समस्त प्रक्रिया से विराजमान महाराजाधिराज समरविजयी श्री अमुक देवपाद चौधरी श्री अमुक को संवाद देते हैं। महामहोपाध्याय श्री अमुक को जो गाँव हमने ब्रह्मोत्तर के रूप में दिया है और जो गाँव राउत श्री अमुक को शासन करने के उपरान्त दिया गया है, उन दोनों गाँवों की चारों सीमावर्त्ती भूमि में जाकर आप वन, जलकर आदि पर शासनपत्रा के अनुसार इन दोनों का अधिकार दिला देंगे ॥२८॥

श्रीकरण से, समस्त प्रक्रिया से विराजमान महासामन्ताधिपति महामहत्तक ठाकुर श्री अमुक महाशय व्यापार से जीविका चलानेवाले सभी साहुजनों को सवाद देते हैं। इस वर्ष का अमुक देश का दान दो लाख अस्सी हज़ार में निश्चित कर ठाकुर उपाधियुक्त क्षत्रिय श्री अमुक को दे दिया है। जहाँ व्यापार करने के लिए देयदान २,८०,००० । इसलिए, इनकी व्यवस्था के अनुरूप खरीद-बिक्री और यातायात करेंगे। (और) मूल (धन) का सोलहवाँ हिस्सा कर-रूप में देंगे ॥२९॥

स्वस्ति । श्रीकरण से, समस्त -प्रक्रिया से विराजमान आदिमहत्तक ठाकुर श्री अमुक पद हाट-घाट से जीविका चलानेवालों को संवाद देते हैं । आपको विदित हो कि इस वर्ष सभी हाट और घाट वणिक् साहु श्री अमुक को दस हजार में नियत करके दे दिये गये हैं । जहाँ देय १०,००० । इसलिए, इनकी व्यवस्था के अनुरूप खरीद -बिक्री और नदी की घटवारी की वसूली करेंगे और उचित राजकर भी देंगे ।।३०।।

श्री अमुक नगर से चौधरी कार्यी श्री अमुक महाशय गोढ़ी, धीवर [1] आदिको जो मछली, कछुआ आदि मारनेवाले हैं - आदेश देते हैं । तुम लोगों को विदित हो कि सभी नदी, नद (बड़ी नदी), छोटा जलाशय, तालाब आदि जलाशय श्री अमुक साहनी को एक हजार में तय कर दे दिये गये हैं, जिसमें नदी, नद अल्प जलाशय आदि सभी जलाशय का देय १,०००। अतः, उनके आदेश से तुम लोग जलचर (मछली आदि) का वध करोगे । प्रत्येक बारी, प्रत्येक जलाश्य का निर्धारित कर चुकाओगे ।।।३१।।

सैन्य-शिविर से, सभी प्रक्रियाओं से युक्त सेनाध्यक्ष ठाकुर श्री अमुक महाशय स्थानाध्यक्षेश्वर (दुर्ग आदि स्थान-विशेष की सेना के अध्यक्ष) श्री अमुक को आदेश देते हैं। आप लोगों के स्थान (दुर्ग) में कौन-कौन सरदार और पैदल सिपाही उपस्थित हैं ? नियुक्त (सैनिकों) में से कौन उपस्थित नहीं है ? यह दोनों लिखकर भेजें । उनमें से दो राज्यों की सीमा पर, जिस स्थान पर शत्रु के आक्रमण की आशंका है, राज्य से जीविका पानेवाले जो-जो लोग नियुक्त हैं, वे यदि वहाँ उपस्थित नहीं हों, तो उनसे राज्य की जीविका छीन लेंगे । (इतना ही नहीं) उनसे (उस जीविका-निर्वाह की राशि का) द्विगुण बसूल करेंगे ।।३२।।

श्री अमुक दरबार से, समस्त प्रक्रिया से युक्त महामहत्तक ठाकुर श्री अमुक महाशय का कार्यी श्री अमुक के प्रति यहपत्र है । चौहान राजपूत श्री अमुक को जीविका-निर्वाह के लिंए पाँच हजार पुराण दिये गये । वहाँ दिये गये ५,००० । अतः इनका पत्र लेकर अमुक वर्ष का देय दे देंगे अथवा राजा की आज्ञा से अपराध के दण्ड के रूप में दण्डित व्यक्तियों से आया हुआ धन दे देंगे ।।३३।।

अमुक ग्राम से, महत्तम[2] श्री अमुक का, कर्मान्तिक (कामत के अधिकारी) श्री अमुक के प्रति यह पत्र है । कार्य यह है कि जिस कामत पर (तुम नियुक्त हो, वहाँ) तुमने कौन -सा धान बोया है, बोये हुए में करलीक [3] कितना है, यह हमलोगों को लिखो ।

---

१. *जातिभास्कर, पृ० १९६: यह जाति मछली आदि जलजन्तु को मारकर अथवा पकड़ कर अपनी जीविका चलाते हैं ।*

२. *विद्यापति के समय में मिथिला में खेती-बारी के सबसे बड़े राज्याधिकारी को 'महत्तम' कहते थे।*

३. *धान्य -विशेष का नाम ।*

खिल [1] (मैथिली में प्रचलित खिलहा) में कितने धन के खर्च से कितना खेत तैयार किया गया यह भी लिखना। आगे रोपने के लिए गढवार, मगही आदि कोमल धान का बीज गिराना और खेत को अच्छी तरह कुदाल से तैयार करना । मजदूरी के लिए अन्न यदि बाहर हो, तब तो ठीक ही है । यदि न हो, तो वेतन के लिए यहाँ से हमें लिखना । तब यहाँ से भेज दिया जायगा। बैल का भरण-पोषण इस प्रकार यत्न से करना,जिससे कोई बैल दुर्बल न हो । वृषभ-शाला मे मच्छड़ का उपद्रव तथा कीचड़ से कठिनाई नहीं हो ॥३४॥

अमुक ग्राम से, श्री अमुक सिंह का, परम कल्याणभाजन कल्याणमय श्री अमुक के प्रति यह शुभाशीषयुक्त पत्र है । यहाँ कुशल है । अन्य बात यह है कि यहाँ दैनिक व्यय के लिए सामग्री नही है । यह राजा को सूचित कर अपनी जीविका के लिए प्रार्थना करेंगे । श्रीमान् (राजा) के आदेश से ही श्री ठाकुर को परितुष्ट कर, पतित व्यक्तियों की संख्या श्रीमान् राजा के चरणों में सूचित करेंगे और एक बड़ी सेना की भी व्यवस्था की जानी चाहिए । उससे क्षमा की रक्षा करते हुए अपनी जीविका प्राप्त की जा सकती है । हमारे और भी पुत्र हैं, फिर भी परिवार के पोषण की आशा के पात्र, वंश की मर्यदा की रक्षा मे समर्थ श्रीमान् ही सौ वर्षो तक विराजमान रहें (यही हमारी कामना है) । अधिक क्या (कहूँ) ॥३५॥

स्वस्ति अमुक ग्राम से, ठकुरानी अमुक देवी का, परप स्थायी मंगल से युक्त कल्याणमयी श्री अमुक देवी के प्रति शुभाशीष -पुरस्सर यह पत्र है । यहाँ कुशल है । वहाँ कुशल चाहते हैं । कार्य यह है कि ननद के असन्तोष से तथा सौत के कलह से श्रीमती के महान् क्लेश की बात सुनी (जाती) है । इससे मन में विकलता है । यद्यपि पुत्री तो सदा माता-पिता की चिन्ता का कारण होती रही है, फिर भी शील को ही एकमात्र धन समझनेवाली घर के सभी कार्यो में कुशल तथा गुरूभक्तिपरायण आपके प्रति कोई प्रतिकूल बात मैं नहीं सुन सकती । यद्यपि ननदें दुष्ट हैं, सौतें द्वेषिंणी हैं और आपके विरूद्ध कार्य करती हैं; फिर भी मुखरता को त्याग कर आपको शील का ही अवलम्बन करना चहिए। वस्तुत :, प्रतिक्षण पति की आज्ञा का अनुसरण करते हुए सभी प्रकार से प्रणतिपूर्वक स्वामी की भक्ति करनी चाहिए, जो (स्वामी-भक्ति) दोनों लोकों मे उपकार करनेवाली होती है और सौभाग्य तथा सम्पत्ति प्रदान करती है दूर देश होने के कारण यहाँ से खोज करने के लिए (भेंट-मुलकात करने के लिए) जो लोग नहीं जाते हैं, उस अनुचित को क्षमा करें । सम्प्रति, सन्देश कें रूप में बड़ी सुपारी, सुन्दर चिकनी कौड़ी, शुद्ध सिन्दूर, सुगन्धित तेल, केशर और लाल वस्त्र स्वीकार करेंगी । वर्षाकाल समाप्त होने पर आपके भाई आपको लिवा लाने के लिए जायेंगे ही ॥३६॥

स्वस्ति । अमुकनगर से, लेखी [2] श्री ठाकुर का, परम-कल्याणभाजन प्राणाधिक स्नेहपात्र

---

१. *बंजर या परती भूमि । विस्तृत वर्णन के लिए देखें; विवादचन्द्र, पृ० ६५-६६; विद्यापाति के समकालीन मिसरू मिश्र ने वर्णन किया है कि जो खेत खिल (परती) पड़ा हुआ है, उसे जोत-कोड़कर,कष्ट से उर्वर बना कर जो अनाज उत्पन्न करेगा, वह मालिक को सात वर्ष तक आठवाँ भाग देगा और आठवे वर्ष में मालिक जो कहेंगे, वह देना होगा।*

२. *राज्याधिकारी -विशेष । इनका काम हिसाब का लेखा-जोखा लगाना था ।*

सुपुत्र श्री अमुक के प्रति सिर -चुम्बनपूर्वक यह शुभकामना -पत्र है । यहाँ कुशल है । आप अपने कुशल -समाचार से हमलोगों को निरन्तर आनन्दित करें हमलोग यहाँ राजस्थान (राजधानी) में अपने अधिकार का कार्य निबाहते हुए रह रहे हैं । इसलिए यहाँ की कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिए । राजा का कार्य करने वाले हम कायस्थों पर कभी राजा क्रुद्ध होते हैं, कभी प्रसन्न । इसलिए, उनके क्रोद्ध या प्रसाद की बात से बैर या उत्साह नहीं करना चाहिए । दोनों ही स्थितियों में सन्तोष धारण कर अपने घर में कार्य करना चाहिए और विद्या का अभ्यास करना चाहिए । धन का उपार्जन तथा कुल का उपार्जन (वंश की प्रतिष्ठा का उपार्जन) महान् वस्तुएँ हैं, यह सोचकर दिन-रात यत्नपूर्वक गुण के अभ्यास में मन लगाना चाहिए ।।३७।।

स्वस्ति । अमुक नगर से, महामहोपाध्याय श्री अमुकेश्वर का, परम मान्य, परम स्नेहसिन्धु, तपःशील, कुलाचार के सम्यक् ज्ञान से निर्मल चरित्रवाले जामाता श्रीमान् मिश्र श्री अमुक महाशय के प्रति अत्यन्त विनयविज्ञानपूर्वक चारों वेदों में विहित शुभाशीष -युक्त यह पत्र है । यहाँ कुशल है । (यह जानकर) सन्तुष्ट हों । अपनी कुशल- वार्त्ता की अमृतधाराओं से हमें निरन्तर अभिसिंचित करते रहें । कार्य यह है कि श्री महाशय ने जो वर बताया था, उसे अन्य लोगों के भी परामर्श से स्थिर कर लिया । तबसे दसवे दिन शुभ लग्न में हमारी कन्या का विवाह होगा । महाशय सपत्नीक यहाँ आकार अपने सामने यह मंगल कार्य (सम्पन्न) करें । इससे सबके मन में प्रसन्नता होगी । यँह निबेदन है । श्रीमान् जामाता परम मान्य हैं । अतः यहाँ के कार्य -संकोच को अंगीकार कर कल्याणमय श्री अमुक को अपनी बहन को लाने के लिए भेजा जा रहा है । यही अपनी बहन को लाने के लिए आपके माता -पिता के चरणों में निवेदन करेगा। समयाभाव विलम्ब का सहन नहीं करता, इसलिए शीघ्र यहाँ के लिए प्रस्थान करेंगे ।।३८।।

स्वस्ति । श्रीकरण से, सुप्रतिष्ठ महापट्टनिक ठाकुर श्री अमुक दास महाशय को पांजिक श्री अमुक का यह पत्र है । कार्य यह है कि आपने जो पहले वर्ष की प्राप्य राशि के अवशिष्टांश की पंजी दी है, उसका हिसाब करने पर बही एवं लेखा में मेल नहीं खाता है और न बही पर अंकित राशि के साथ ही उसका मेल है, यह सुनकर जबतक महामहत्तक ठाकुर श्री अमुकपाद कुपित न हो जायँ, उसके पूर्व ही आकर पंजी को सुव्यवस्थित कर लें, अन्यथा पंजी के अनमोल होने से आप सैकड़ो पराभवों के पात्र बनेंगे ।।३९।।

स्वस्ति । सरस्वती -खण्ड से, सभी प्रक्रियाओं से युक्त महासूपकारपति श्री अमुक महाशय सूपकारों को संवाद देते हैं । हमें अभी कन्या के विवाह की व्यस्तता है । इसलिए हम श्री देवपाद की आज्ञा लेकर घर जा रहे हैं । आप सूपकारों के बीच प्रवीण, ज्ञान -सम्पन्न एवं रसोई के काज में कुशल हैं और द्रव्यों के संयेग की मात्रा के ज्ञान में निपुण हैं । अत, जबतक हम लौटकर आते हैं, तबतक आप हमारे प्रतिनिधि के रूप में राजा की बहन के कार्यो को सम्पादित करेंगे ।।४०।।

स्वस्ति । पान-भाण्डार से, सप्रक्रिय महापर्णागारिक ठाकुर श्री अमुक महाशय (राजा की) बहन के भण्डारी श्री अमुक को संवाद देते हैं । यहाँ राजा की बहन के घर में पान विनष्ट हो गया है तथा उसमें सितासित दोष (उजला-काला धब्बा) हो गया है । श्वेत पान की खोज

हो रहा है। आप पके पान के लिए भेजे गये हैं। अभी महीने-भर से आप वहीं हैं। यहाँ राजा की बहन की योग्य पान नहीं है, यह समझकार श्वेत पान लेकर शीघ्र यहाँ आ जायँ। हजार टंक का भीमसेनी कपूर भी लेते आयेंगे। नागर खण्ड पान एवं सिन्दुरिया सुपारी की भी खोज करेंगे। यदि मिले, तो लेते आयेंगे ॥४१॥

स्वस्ति। पानीयशाला से, सप्रक्रिय पानीयशाला के अध्यक्ष ठाकुर श्री अमुक महाशय कुम्हार[1] श्री अमुक को संवाद देते हैं। कार्य यह है कि यहाँ अनेक पानीय- शालाएँ[2] समीचीन (अच्छी दशा में) नहीं हैं। इसीलिए, पानी को दिन में धूप में गरमकर, रात में शीत में रख, गीले वस्त्र से ढककर, ताल के पंखे से शीतल नहीं किया जा सकता है। बहुत घट रहने पर ही यह कार्य संभव है। यह समझकर बड़े -बड़े घड़े बनाकर शीघ्र यहाँ ले आओगे। सुनते हैं कि वाणिज्य -व्यवसायी लोग आये हुए हैं। इसलिए उनसे, अगरु, गुग्गुल, सिंहलक आदि धूप-द्रव्य, भेजे गये टंक से, खरीदकर शीघ्र यहाँ आओगे। गुलाब से सुवासित खस का जल घड़े में देकर रखना। अधिक क्या ॥४२॥

स्वस्ति। राजधानी से,सप्रक्रिय महावार्त्तिक (प्रधान गुप्तचर) नैबन्धिक ठाकुर श्री अमुक महाशय वार्त्तिक (गुप्तचर) श्री अमुक को संवाद देते हैं कि (तुम) अमुक के द्वारा राजकाज की वार्त्ता का ज्ञान प्राप्त करने के लिए भेजे गये हो। परन्तु, सुनते हैं कि यहाँ घर में ही रह गये हो, यदि यह (बात सत्य) हो, तो इस पत्र को देखते ही शीघ्र जहाँ के लिए भेजे गये हो,वहाँ चले जाना। यदि घर के सुख के लोभ से दिनभर भी घर में देर कर दोगे, तो राजा का कोपभाजन बनोगे। राजा से जीविका पानेवाले सेवक को घर का सुख कहाँ। यदि एक दिन में संवाद प्राप्त नहीं हुआ, तो दूत[3] पुरूष का गुण ही क्या। इति ॥४३॥

स्वस्ति। अमुक करण से, सप्रक्रिय महादेशनैबन्धिक ठाकुर श्री अमुक महाशय प्रतिनिधि श्री अमुक को संवाद देते हैं। आप कुछ दिनों के लिए ही घर गये थे और वहीं रुके हैं। इससे लगता है कि राजा का आदेश आपने भुला दिया है। इस समय आषाढी[4] के निकट सम्पर्क में रहने से आप राउत पदाति (पैदल सेना) आदि के अनेक निबन्ध -पंजियों के रहस्य जानते हैं। इसलिए, आपके उपस्थित रहने पर निबन्ध के विरूद्ध कार्य नहीं होगा ॥४४॥

स्वस्ति। राजकीय देवपूजा-गृह से, सप्रक्रिय महादेवागारिक ठाकुर श्री अमुकेश्वर महाशय पुष्पभट्ट श्री अमुक को सूचित करते हैं। तुम अपने काम से घर गये और वहीं रह गये। यहाँ देवापूजा के समय फूलों की कमी देखकर श्रीमान् (महाराज) रूष्ट हो गये हैं, ऐसा अनुमान है।

---

१. *जातिभास्कर, पृ०१७८: मिट्टी के बरतन बनाना इसकी जीविका है।*

२. *जहाँ यात्रियों को पानी पिलाया जाता है, उसे पानीयशाला (पनसाला, प्याऊ) कहा जाता है।*

अतः, जो लड़के और माली यहाँ उपस्थित नहीं हैं, उन्हें साथ लेकर शीघ्र आओगे। उससे ताजे बालों और कीड़ों के दोष से मुक्त, छिद्र -रहित एवं समीचीन रीति से गुँथे हुए पुष्प-पत्र राज देवार्चना में उपलब्ध होंगे ।।४५।।

स्वस्ति खजाने से, सप्रक्रिय महाभाण्डागारिक ठाकुर श्री अमुकेश्वर महाशय मुद्राहस्तक श्री अमुक को सूचित करते हैं, राजा के द्वारा जब आप किसी काम से भेजे गये, तब अपने साथ मुद्रा (मुहर) भी लेते गये। यह अच्छा नहीं किया। उस (मुद्रा) के विना भाण्डागार में द्रव्य रखने के समय गाँठ डालकर काम चलाया जा रहा है। यह जानकर, आप अपने किसी प्रनिनिधि के द्वारा मुद्रा शीघ्र वापस भेज दें ।।४६।।

श्रीविद्यापति-लिखित लिखनावली में निम्न श्रेणी के व्यक्तियों के लिए लेखन-पद्धति का दूसरा ग्रथन समाप्त हुआ।

समकक्ष लोगों के लिए लेखन-पद्धति

स्वस्ति। यश -रूपी कर्पूर की धूलि से दिशाओं को पूर्ण करनवाले , यज्ञादि तथा जलाशय

३. *दूत के सम्बन्ध में द्रष्टव्य राजनीतिरत्नाकर, पृ०४२:*

दूतञ्चैव प्रकुर्वीत सर्वशास्त्रविशारदम् ।
इङ्गिताकारचेष्टज्ञं शुचिं दक्षं कुलोद्गतम् ।।
अनुरक्तः शुचिर्दक्षः स्मृतिमान्देशकालवित् ।
वपुष्मान् वीतभीर्वाग्ग्मी दूतो राज्ञः प्रशस्यते ।।
दूत एव हि सन्धत्ते भिनत्त्येव च संहतान् ।
दूतस्तत्कुरुते कर्म्म भिद्यन्ते येन मानवाः ।।
स विद्यादस्य कृत्येषु निगूढेङ्गितचेष्टितैः ।
आकारमिङ्गित्तं चेष्टा भुत्येषु च चिकीर्षितम् ।।
लब्ध्वा च सर्वं तत्त्वेन परराजचिकीर्षितम् ।
तथा प्रयत्नमातिष्ठेद्यथात्मनं न पीडयेत् ।।

दूतद्वारेण लब्ध्वा राजेति शेषः । दूतस्यावध्यत्वमाह नीतौ शुक्रः ।

दूतो म्लेच्छोऽप्यवध्यः स्याद्राजा दूतमुखो यतः ।
उद्धतेष्वपि शस्त्रेषु दूतो बदति नान्यथा ।।

तथा

स्वापकर्षं परोत्कर्षं दूतोक्तैर्मनयते च कः ।
सदैवावध्यभावेन दूतस्सर्वं हि जल्पति ।। एवं पृ० ४३-५४।

४. *चतुरंग बल के अन्तिम महत्त्वपूर्ण अंग पत्तिसेना (पैदलों) के लिए महाभारत के शान्तिपर्व में उपलब्ध बार्हस्पत्य उद्धरण में पदाति शब्द का प्रायोग मिलता है (शान्ति ०, १०३.३७)। कौटिल्य भी रथसेना की ही भाँति पदाति के कार्यों को मानते हैं ।(अर्थ ०२.३३)। उनके अनुसार सभी देश -काल में शस्त्र-ग्रहण करना एवं सैनिक प्रशिक्षण देना उनका कर्त्तव्य था। पाँचवी शती ईसवी-पूर्व के उत्तरार्द्ध में भारतीय पद्धति इतनी महत्वपूर्ण हो चुकी थी कि पारसीक शासक क्षयार्षक पक्ष में भारतीय सेनाएँ ग्रीस में लड़ी थीं। पदाति का वर्णन करते हुए हेरोडोटस का कथन है कि वे भारतीय सूती वस्त्र पहने, बेंत के धनुष एवं बाणों से युक्त थे। बाणों के अग्रभाग में लोहे का फल लगा होता था। गन्धार के सैनिक धनुष एवं छोटे भाले लिये हुए थे, जो निकट से युद्ध के लिए उपयोगी थे, जब कि भारतीय दूर से निशाने लगाते थे (The Age of imperial Unity. P. 42) ।*

आदि से समस्त पृथ्वी को विभूषित करनेवाले, सत्य-व्रत -पालन में युधिष्ठिर -सदृश, सैकड़ों संग्राम में विजयी महाराज श्री अमुकदेवसिंह को अमुक ग्राम से अमुक राजा का यह प्रेमपत्र है। यहाँ कुशल है। अपने सेना -सहित परिवार का कुशल लिखकर आनन्दित करें। कार्य यह है कि हम दोनों की मैत्री पूर्व से वर्त्तमान है। हमारे कोष[1] और जनपद में आपका भी अधिकार है। इसलिए, आपसे निवेदन (यह) है कि यवनेश्वर द्वारा भेजी गई सेना आपके राज्य पर आक्रमण के हेतु समीप में आ गई है। तब आपको जो अनुकूल हो, वह हमें लिखें। सज्जनों की मैत्री का प्रयोजन समय पर ही होता है। यदि यवनेश्वर के साथ सन्धि करें, तो मैं धन और उपहार की वस्तुएँ भिजवाऊँ। यदि युद्ध करें तो सेना भिजवाऊँ और स्वयं आकर यथायोग्य कार्य करूँ। बहुत क्या लिखूँ। बाहर नाम लिखा है ॥४७॥

स्वस्ति। सन्धि, विग्रह, साम, दान आदि प्रस्तावोचित सभी वार्त्ताओं से पवित्र आचार्य, स्वाभाविक रूप से खिले हुए केवड़े फूल के केसरों की तरह सुन्दर कीर्त्तिवाले, प्रक्रियायुक्त यह महासान्धिविग्रहिक ठाकुर श्री अमुकेश्वर महोदय की सेवा में अत्यधिक स्नेहज्ञापक यह रमणीय कुशल -पत्र है। विशेषः, हमलोग कुशल हैं, इससे आप आनन्दित होंगे। आप अपने

---

१. *राजनीतिरत्नाकर, पृ० ३१-३२: अथ कोषनिरूपणम्। सुदृढ एवं समृद्धिशाली राज्य के लिए आर्थिक दृढ़ता अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होती है। अतः, बृहस्पति तथा अन्य धर्मार्थशास्त्रियों ने समान रूप से राज्य-प्रकृतियों में कोश को महत्त्वपू स्थान प्रदान किया है (कामन्दकीय, ८.४; अर्थ ०,६.१; मनु०९.२२४)।बार्हस्पत्य चिन्तन के अनुरूप कोश के अन्तर्गत अर्थनीति के विनिश्चय और उसके सफल प्रयोग पर ही राज्य की शक्ति, उसका महत्त्व तथा अन्तर-राज्यीय सम्बन्धों की भावना निर्भर करती थी। अर्थनीति के विनिश्चय, उपकरणों एवं प्रयोगों के लिए अर्थसिद्धान्तों का ज्ञान भी परमावश्यक था। बृहस्पति धन को ही समस्त क्रियाओं का मूल मानते हैं (धनमूलाः क्रियाः सर्वाः)। ठीक उसी प्रकार से कौटिल्य भी कोष का महत्त्व प्रदान करते हैं (कोशपूर्वास्सर्वारम्भाः)। उनके अनुसार मनुष्यों की वृत्ति, मनुष्यवती भूमि यह सब अर्थ है। ये दोनों ही विना कोश के सम्भव नहीं। कौटिल्य का कथन है कि खानों से कोश, कोश से सेना, कोश और सेना से भूमि प्राप्त होती है। वहीं धर्म (अर्थात् कर्त्तव्य) तथा काम (अर्थात् उपभोग) का मूल है। शुक्रनीति के लेखक ने भी बल (सेना), प्रजा तथा यज्ञ के निमित्त कोष-संग्रह का महत्त्व स्वीकार किया है उनके अनुसार दोनों लोकों में सुख प्रदान करनेवाला और शत्रु-राजा को दुःखदायी होता है। (शुक्र .४. ११८)। विष्णुधर्मोत्तर लेखक का मत है कि वित्तवान् राजा शत्रुघात में समर्थ होता है और शत्रु के सम्मुख शिथिल नहीं होता। सुदीर्घकालीन विग्रह (कूटनीतिक शीतयुद्ध) भी कोषवान् व्यक्ति ही कर सकता है। महती सेनावाले शत्रुओं में भी धनवान् व्यक्ति भेद डलवा सकता है (वीरमित्रोदय, राजनीतिप्रकाश, पृ० २५७)। 'कामन्दकीय नीतिसार' कोष को राष्ट्रीय महत्त्व की योजनाओं और शासन यन्त्र के संचालन के लिए भी आवश्यक मानता है। उसका कथन है कि भृत्यों का भरण, अर्थात् राजकीय कर्मचरियों का वेतन, दान और राजकीय आभूषणों और वाहनों के लिए, दुर्ग के संस्कार (सैनिक आवश्यकता के अनुरूप दुर्ग की मरम्मत), राज्य की स्थिरता, सेतुबन्धों के निर्माण, बणिक कर्म, अर्थात् वाणिज्य के प्रबन्ध तथा धर्म, काम और अर्थ की(त्रिवर्ग) सिद्धि कोष से ही सम्भव है (कामन्दकीय०,१३.३१-३४)। इससे ज्ञात होता है कि किसी भी राज्य का मेरुदण्ड कोष ही है।*

सैकड़ों कल्याणसूचक समाचारों से हमें आनन्दित करें। पहले मित्रता के इच्छुक आपके महाराज के प्रेमपूर्ण आचरण को देखकर हमलोगों ने अपने प्रभु को आपके राजा के साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार करने के के लिए प्रेरित किया। यहाँ महत्त्वाकांक्षी महामना राजा ने जो-जो काम किये और उन्होने जिस प्रकार पालन किया है, उससे सीमावर्त्ती दोनों भूभागों में लोग सन्देह -रहित होकर रह रहे हैं। अभी आपके राजा के सम्बनिधयं के व्यवहार में कहीं-कहीं वक्रता दृष्टिगोचर हो रही है। उसके विषय में अगर (हमारे) राजा जान जायँ, तो वे इस अनुचित आचरण को बर्दाश्व नहीं कर सकने के कारण नाराज होंगे। तब उनकी क्रोधाग्नि को कौन शान्त करेगा ? उस राज्य में आप ही मन्त्री हैं और यहाँ मैं राजा का समीपवर्त्ती हूँ, तब यदि दोनों व्यक्तियों के सौहार्द्र में इस प्रकार का भेद पड़े, तो इससे हमलोगों की क्षुद्रता सूचित होगी। राजा स्वभाव से ही स्वतन्त्र होते हैं –उनकी जैसी मरजी होती, वैसा ही आचरण करते हैं। परन्तु, जनता मन्त्रियों को ही दोषी समझती है। अतः, यह समझकर आप उन लोगों को प्रोत्साहन न दें। विरोधियों को निष्कासित करें। भू-भाग का अतिक्रमण नहीं होना चाहिए। चतुरता से सम्पन्न आप इस सम्बन्ध में जो उचित समझें, वह कहें। इसमें हम सबके बीच चिरकाल तक स्नेह बना रहेगा। बाहर नाम लिखा है ॥४८॥

स्वस्ति। परमादरणीय, उत्कृष्ट सुजनता के समुद्र, आचार और चरित्र से पवित्र, दोनों वंशों के लिए भगीरथ (तुल्य) सदुपाध्याय श्री अमुक शर्मा महोदय की सेवा में अमुक गाँव से परम स्नेह से रमणीय विनयसूचक यह पत्र है। यहाँ कुशल है। वहाँ की कुशलता लिखकर हमें आनन्दित करें। आवश्यकता यह है कि श्रीमान् श्रोत्रिय हैं, कुलीन एवं सर्वविद्यानिष्णात और सदाचारपरायण हैं। अतः, अपने उत्कर्ष का इच्छुक मैंने आपके साथ सन्तति सम्बन्ध स्थापित किया। लेकिन, उसके विपरीत मैंने जो पुत्री आपके पुत्र के साथ व्याही, उसकी दुर्दशा की कथा अगर कुछ हो, तो उसे छिपाये ही रखें। आपका कहना है कि उस सम्बन्ध को लेकर हम सबके बीच वैमनस्य हुआ। यह तो सर्वथा निरर्थक है। वस्तुस्थिति तो उसके विपरीत है। आप अपने महत्त्व को समझें। विज्ञ व्यक्तियों को अधिक क्या कहा जाय। बाहर नाम लिखा है ॥४९॥

स्वस्ति। अमुक गाँव से, कुन्द फूल की तरह उज्जवल कीर्त्ति से सम्पन्न, प्रतिष्ठा से सम्पन्न सौदागर श्रीअमुक की सेवा में अमुक का यह प्रेमपत्र है। यहाँ कुशल है। आपकी कुशलता की कामना करता हूँ। कहना यह है कि हमलोगों की सभी इच्छाएँ पूर्ण हैं। विभिन्न वस्तुओं से भरी और मणियों से लदी हुई हमारी नाव समुद्र के पार से निर्विध्न लौट आई। अतः, आप उत्साहित हों। दूसरी बात यह है कि श्रीमान् के कुल, शील और कृतज्ञता के महत्त्व को देखकर हमलोगों ने मैत्री की। वह मैत्री श्रीमान् के वचनों के अनुसार किये गये व्यवहार से दिनानुदिन प्रतिपदा के चन्द्रमा की तरह बढ़ी। और, एक बात यह है कि मैत्री के दो तरह के फल होते हैं –एक प्राणधीन,दूसरा धनाधीन । उसमें मेरे प्राणों के अधीन जो सेवा है, उसकी आवश्यकता श्रीमान् को कब होगी, यह भगवान् ही जाने। परन्तु, धनाधीन मैत्री के निर्वाह में यह बाधा है कि आप मेरी वस्तु स्वीकार करने में सतत हिचकिचाते हैं। तब मैत्री का फल

यह है कि अभी हमलोग सभी व्यापारी व्यापार करने के लिए विदेश गये थे। वहाँ चार अच्छे मोती मिले। वे आपके योग्य हैं। अतः, हम भेज रहे हैं। उन्हें स्वीकार करने में आप संकोच न करें। संकोच तो दूसरे की वस्तु लेने में होता है। जब (हम दोनों के बीच) मैत्री है , तब अन्यथाभाव की गुंजाइश कहाँ है। यद्यपि सज्जनों की दोस्ती कार्यसापेक्ष नहीं होती, फिर भी समुचित पूजा से सुशोभित होकर वह मैत्री अधिक उपयुक्त होती है। सौगात के रूप में भेजे गये आँवले के फल के आकार के चार बड़े और गोल आबदार मोती, दूसरा पत्रचिह्न के रूप में भेजे गये रेशमी वस्त्रखण्ड चौदह, सूती वस्त्रखण्ड बीस, चाँदी के पात्र चार,सोना का पात्र एक, कपूर दस पल, अच्छा चन्दन एक हजार पल। बाहर में नाम लिखा हुआ है ॥५०॥

स्वस्ति। परमोज्ज्वलचरित्रवान् अत्यधिक पवित्र कीर्त्ति-रूपी केतकी के फूल की सुगन्ध से पृथ्वीतल को सुगन्धित करनेवाले सुरुकि- वंश के श्रेष्ठ कुमार श्री अमुक सिंह की सेवा में अमुक गाँव से, नैसर्गिक मैत्री की अमृतधारा से युक्त यह प्रेम-पत्र है। यहाँ कुशल है। वहाँ का कुशल चाहता हूँ। आवश्यकता यह है कि आपने जो राजा के साथ विवाद किया, वह उचित नहीं हुआ। यद्यपि आप विख्यात परम्परा के व्यक्ति हैं, राजा के सम्मान -पात्र हैं और अनेक युद्धों में यशस्वी हुए हैं। ऐसा व्यक्ति अपमान नहीं सह सकता है, फिर भी ये राजे प्रभुता -सम्पन्न होते हैं। अतः, इन लोगों की तेजस्विता की रक्षा करनी चाहिए। समानता की भावना से प्रेरित होकर वाक्कलह करना उचित नहीं है। काल -दोष से वाद-विवाद हो गया। यह (आपका) अनुचित विचार हुआ कि तत्काल क्रोध में आकर आपने यह स्थान छोड़ दिया। राजा जब धन देकर सन्तुष्ट करते हैं और अलंकार देकर सम्मानित करते हैं, तभी वे अच्छे प्रभु कहलाते हैं और जब वे नाराज हो गये, तब क्या वे दुष्ट प्रभु हो गये। कुलीन व्यक्तियों की यह मर्यादा नहीं है। अभी क्रोध में आकर आप राजधानी से निकल पड़े हैं। जबतक मैं आता हूँ, तबतक आप जहाँ हों, वहीं रूक जायँ।राजा लज्जित हैं। वे भी श्रीमान् के अनुनय के लिए आयेंगे। आप निश्चय ही कहीं न जायँ। यदि कहीं जाना होगा, तो दोनों व्यक्ति साथ ही चलेंगे। हम दोनों साथ - साथ रहे, हमारा विद्याध्ययन, साहित्य-सेवन, प्रभु-सेवा, युद्ध आदि भी साथ रहकर ही सम्पन्न हुए। इसलिए, एक जगह साथ रहने पर शुरू से अन्त तक शुद्ध रहेगा। आप जहाँ हैं, वहाँ से एक पग भी आगे न जायँ, अगर जायँ, आपको मेरी शत-शत शपथ है। बाहर नाम लिखा है ॥५१॥

स्वस्ति। न्यायोपार्जित पवित्र धन से सम्पन्न, समुचित अवसर पर उचित आचरण में निपुण, गंगा की धारा की तरह निर्मल चित्तवाले वणिक् श्री अमुक महाशय की सेवा में, गोपालपुर से, अनेक विनय से युक्त यथोचित यह पत्र है। श्रीमान् के सहज स्नेह से यहाँ कुशल है। अतः आपके हृदय में सन्तोष हो। अपने उत्साहवर्द्धक समाचार से हमें आनन्दित करें। काम यह है कि आपके पत्र के अनुसार बातें समझी। आप लिखते हैं कि 'अपने पास सब प्रकार के धान के बीज हैं, सिर्फ तुलसी (धान) का बीज नहीं है, वह हमारे ही द्वारा भेजे गये ५० पुराण कपर्दक से खरीदकर हमें (बीज) भेजें। आप तो कृषि-वृत्ति में समयोचित विधान में निष्णात हैं। यह मैंने बहुतों के मुख से सुना है। मैं भी गृहस्थ ही हूँ, तब से हम दोनों एक

ही धन्धावाले होने के कारण मित्र हुए । अतः मैंने तुलसी धान और गोला धान के बीज पूरे स्नेह के साथ भेजे हैं । उन्हें आप ले लेंगे । आपके कपर्दक जिस रूप में आये थे, उसी रूप में आदमी के मार्फत दिये भेज गये हैं । उन्हें भी आप ले लेंगे । बाहर नाम लिखा है ॥५२॥

स्वस्ति । निष्कलंक राजनीति में निष्णात मतिवाले, धर्म की स्थिति के स्थापन के उपाय में अत्यन्त विख्यात, शुद्ध हृदयवाले, समस्त प्रक्रिया आदि से विराजमान, महामहत्तक ठाकुर श्री अमुक के प्रति परम सौहार्द्र के सुधा-सर से सिंचित, विनय का विज्ञापन करनेवाला यह पत्र है । यहाँ कुशल है । वहाँ का कुशल चाहते हैं । बात यह है कि यहाँ सुनते हैं कि श्रीमान् महाराज श्री अमुक महाशय की अपेक्षा नहीं कर राज्य की चर्चा करते हैं । उन महाशय का हमारे साथ पहले जैसा हृदय का सम्बन्ध नहीं है । इससे हमलागों के मन में खेद है । हमलोग उन महाशय के मित्र हैं । वे स्वामी हैं । स्वामी की सेवा कर्म, मन और वाणी से जीवन-पर्यन्त करें,यही कुलीन लोगों का कर्त्तव्य है । स्वामी कुछ भी करें, हमलोगों को अपनी मर्यादा का त्याग नहीं करना चाहिए । यदि त्याग करें, तो भी हमलोग तो उन वस्तुओं पर ध्यान रखें (अर्थात हमारी वस्तुओं को अपनी वस्तु ही समझें) जब आदेश होगा, तब निश्शंक भाव से आपकी (ये चीजें) अर्पित होगी । सम्पत्ति के समय कौन किसका मित्र है ? (वैभव के समय मित्रता की परीक्षा नहीं होती) । मित्र तो गाढ़े वक्त आने पर ही पहचाने जाते हैं । अधिक क्या ? लिखना तो बाहरी बात है ॥५३॥

विद्यापति-रचित लिखनावली में समकक्ष लोगो के लिए (पत्र-व्यवहार) का तीसरा ग्रथन समाप्त हुआ ।

व्यवहार -सम्बन्धी लेख

सिद्धि । लसं २९९ माघ वदी ५,बुध को अमुक ग्राम में प्रतिहस्तक महामहोपाध्याय श्री अमुक शर्मा से उनकी परिषद् के साथ वादी ब्राह्मण श्रीदेवदत्त तथा प्रतिवादी राउत श्रीजयदत्त के ऋण -विषयक विवाद में मेरे पिता से सौ पुराण, एक कपर्दक ब्याज की दर से पाँच वर्ष पहले प्रतिवादी ने ऋण-रूप में लिये थे । वह धन अब दे दे, यह वादी के द्वारा कहे जाने पर मैंने वह धन ले लिया । किन्तु , वह सब मैंने ब्याज-सहित वादी के पिता को लौटा दिया, यह प्रतिवादी के द्वारा कहे जाने के बाद उसकी छानबीन आरम्भ करने पर प्रतिवादी की ओर से अमुक-अमुक शर्मा तीन साक्षी प्रतिवादी ने प्रस्तुत किये, जिन्हें वादी ने भी स्वीकार किया । उन साक्षियों ने निर्धारित इजहार के दिन शपथ के साथ कहा कि प्रतिवादी पहले लिये गये १०० पुराण कपर्दक सूद के साथ उन्हें देकर उऋण हो चुका है । यह सत्य है । निर्णय – ''साक्षी जिसकी प्रतिज्ञा को सच कहें, वह विजयी हो और जिसकी प्रतिज्ञा को झूठी कहें, उसकी पराजय

हो ।'' इस धर्मशास्त्री नियम को ध्यान में रखकर प्रतिवादी श्री अमुक को जयपत्र[1] दे दिया गया ।।५४।।

सिद्धि । परम पूज्य आदि राजाओं की परम्परा में पूर्ववर्त्ती राजा श्रीलक्ष्मणसेनदेव के २९९ वें वर्ष में भादो (की) शुक्ल चतुर्दशी, (तदनुसार) शुक्रवार को, जो मास, पक्ष, तिथि तथा दिन के क्रम से समय को अंक में भी लिखने से लसं २९९, भाद्र शुदि १४ शुक्र (लिखा जायगा)। पुनः परम पूज्य, परम आदि सभी प्रक्रियाओं से युक्त, पुण्यदर्शन, अश्वपति, गजपति, नरपति, तीन प्रकार के (शत्रु, मित्र और तटस्थ) राजाओं के स्वामी, हजारों राजाओं से सेवित, ईश्वर से वरदान प्राप्त करनेवाले, सभी विरुदों से अलंकृत, महासुलतान के अधीनस्थ, पुनः सभी प्रक्रियाओं से युक्त, शत्रुराजा-रूपी कंस के लिए कृष्ण के समान, शिव की भक्ति में निरत, शील एवं पुण्य से युक्त, महाराजाधिराज श्री अमुक देवपाद के उपयुक्त, राज्य तिरहुत में रत्नपुर से संलग्न भीगो परगना के अन्तर्गत मिम्बरा ग्राम में श्री अमुकदत्त शुद्र और शुद्री को खरीदने में अपना धन लगा रहे हैं। इनसे धन लेनेवाला, जिसका नाम राउत श्री अमुकदत्त है, किसी आवश्यकता से अपने दास केवट को, जिसकी आयु लगभग ४४ वर्ष की है, जिसका वर्ण श्याम है और जो अमुक नाम का है, छह रुपये में, उसी प्रकार उसकी पत्नी को, जिसकी उम्र लगभग तीस वर्ष की है, जो गोरे रंग की हैं। और जो अमुक नाम की है चार रुपये में, उसी प्रकार उनके पुत्र को, जिसकी उम्र लगभग १६ वर्ष की है, जो गौर वर्ण का है और जिसका नाम अमुक है, तीन रुपये में, उसी प्रकार उनकी पुत्री को, जो लगभग आठ वर्ष की है, जो श्याम वर्ण की है और अमुक नाम की है, इन धनियों में, गाय चराने तथा अन्य कार्य करने के लिए मूल्य देकर, सदा के लिए (जबतक सूर्य-चन्द्र विद्यमान रहे, तबतक के लिए) बेच दिया। जहाँ बिके हुए शुद्र-शूद्री प्राणी ४, विक्रयांक (मूल्य की संख्या) १४। गोत्र गोत्रनिवारक के लिए दोनों का समान रूप से देय २-२। तब ये शूद्र धनी के घर में हल जोतना, जूठा फेकना, पानी लाना, डोली उठाना आदि सभी कार्य करेंगे। यदि कभी भागकर जायेंगे, तो इस प्रमाण-पत्र से ये उन्हें राजसिंहासन के नीचे (छिपे) रहने पर भी वहाँ से बाहर लाकर पुनः दास-कार्य में लगा देंगे। इस कार्य में देवदत्त, यज्ञदत्त, विष्णुमित्र आदि साक्षी बनाये गये। दोनों की अनुमति से इसे लिखा कायस्थ श्री अमुक ने। लिखने का देय समान रूप से दोनों के लिए १-१। इसी भरण-पत्र का उपयोग किया जाना चाहिए। दिये हुए रुपयों का १४ विक्रयअंक (है)। धन अच्छी तरह देखकर लिया। पत्र में लिखे हुए (लोग) ही उसके साक्षी हैं ।।५५।।

सिद्धि। परम पूज्य आदि राजाओं की परम्परा में पूर्ववर्त्ती राजा श्रीलक्ष्मणसेनदेव के २९९ वें वर्ष में भादो (की) शुक्ल चतुर्दशी, (तदनुसार) शुक्रवार को, जो मास, पक्ष, तिथि तथा दिन के क्रम से समय को अंक में भी लिखने से लसं २९९, भाद्र शुदि १४, शुक्र (लिखा जायगा),

१. *विवाद-ग्रस्त विषय के निर्णय के पश्चात् विजयी पक्ष को जयपत्र देने की प्रथा विद्यापतिकालीन मिथिला में थी। इसका समर्थन बृहस्पति भी करते हैं। उनका मत है कि जिस व्यक्ति को सभ्य तथा प्राड्विवाक निर्दोष माने, उसे जयपत्र दे दिया जाय। जयपत्र में वाद, उत्तर, क्रियापद आदि का संक्षिप्त विवरण हो। साथ ही, विवाद में उसकी विजय भी वर्णित हो।*

पुनः परमपूज्य पुण्यदर्शन, समस्त प्रक्रियाओं से युक्त श्री अमुकदेव के राज्य में, तिरहुत में अमुक-अमुक परगने के अमुक ग्राम में राउत श्री अमुक शुद्र के खरीदने में अपना धन लगा रहे हैं। उनसे धन ग्राहक ने, जिनका नाम राउत श्रीअमुक है, पंच (मध्यस्थ) के द्वारा निर्धारित मूल्य दो रूपये टंक में अपने-आपको सदा के लिए बेच दिया। जहाँ स्वयं बिका हुआ प्राणी १, बिकने का मूल्य अंक में दो रूप्य टंक (हुआ)। गोत्रागोत्र का निवारण धर्म ही है। यह शूद्र धनिक के घर में दास का कम करेगा। यदि कदाचित् भागकर जायगा, तो इस पते (प्रमाण) से उसे राजसिंहासन के पास से भी लाकर पुनः दास-कर्म में लगा दिया जायगा। इस कार्य के (दो) साक्षी अमुक-अमुक बनाये गये हैं। दोनों की अनुमति से श्री अमुक ने इसे लिखा। लेखन-कार्य का देय दोनों देंगे। भरण-पत्र भी यही है। पत्र में लिखे (दो) साक्षी हैं ॥५६॥

सिद्धि। परम पूज्य आदि राजाओं की परम्परा में पूर्ववर्त्ती राजा श्री लक्ष्मणसेनदेव के २९९वें वर्ष में भादो शुक्ल चतुर्दशी, शुक्रवार को, जो सास, पक्ष, तिथि और दिन के क्रमानुसार समय को अंक में लिखने पर लसं २९९, भाद्र शुदि १४ शुक्र (लिखा जायगा), फिर परम पूज्य आदि सभी प्रक्रियाओं से समन्वित पुण्यावलोक महाराजाधिराज श्रीमान् अमुकदेव के तिरहुत में राज्य करने के समय अमुक परगने से सम्बद्ध अमुक गाँव में ठाकुर श्री देवदत्त सर्ववारव्यूढि बन्धक के लिए अपने धन का प्रयोग करते हैं। इनके साथ धन लेनेवाला राउत श्री अमुक है। राजकर देने की अवश्यकता से एक सर्ववारव्यूढि चार रूप्य टंक लेकर अमुक को बहिर्भुजापक देकर यह बन्धक दिया गया, जिसमें बन्धक-रूप में वस्त्र, द्रव्यरहित सर्ववारव्यूढि १, बन्धनांक रूप्य टंक ४। यह धनिकों के घर में शूद्र के जरिये भार ढोने आदि का काम करायगा। अगर ऐसा नहीं करेगा, तो व्युढिपात के सम्बन्ध से हर रोज छह काकिनी धनी को देगा। जिसमें प्रतिदिन व्युढिपात सम्पन्न १॥, बहिर्भुंजापिका में दोनो में देय ४। यह दोनों की अनुमति से ठाकुर श्रीदेवदत्त द्वारा लिखा गया। लिखापन-(शुल्क) दोनों के द्वारा देय समान रूप से एक रूप्य टंक। इस काम में अमुक-अमुक साक्षी हुए। यही पत्र भरण-पत्र भी हैं। पत्र में लिखित (व्यक्ति) साक्षी होगा ॥५७॥

सिद्धि। परम पूज्य आदि राजाओं की परम्परा में पूर्ववर्त्ती राजा श्रीमल्ल लक्ष्मणसेनदेव के २९९वें वर्ष में, भादों शुक्ल चतुर्दशी, शनिवार को, जो मास पक्ष, तिथि और दिन के क्रम से समय को अंक में भी लिखने पर लसं २९९, भाद्र शुदि १४, शनि लिखा जायगा। फिर, परमपूज्य आदि पुण्यावलोक, सभी प्रक्रियाओं से सुशोभित, महाराजाधिराज श्रीमान् अमुक देव के तिरहुत में राज्य करने के समय अमुक देश से सम्बद्ध अमुक परगने में संलग्न अमुक गाँव में राउत श्री अमुक समर्पित व्यूढि बन्धक रखने में अपने धन का प्रयोग करता है। इसके साथ धन लेनेवाला अमुक नाम का कोई अत्यधिक आवश्यक काम से अमुक नाम के, २५ साल

उम्रवाले साँवले रंग के शूद्र कैवर्त्त [1] को बन्धक रखकर अमुक को व्यूढि-भुंजापक देकर पाँच रूप्य टंक लिया, जिसमें समर्पित बहिःप्राणी १, बन्धकांक ५, शूद्र को हर रोज दिया जानेवाला पुरुषाहार १, प्रतिवर्ष पट्टसन का वस्त्र एवं कपास का वस्त्र १ । अगर किसी कारण-विशेष से बहिःपात हो, तो व्यूढि के सम्बन्ध से धनिक को बहिभंग के रूप मे दो पण दिये जायेंगे। जहाँ पण २ । यह दास धनिक के दान की तरह सभी दास-कर्म करेगा। दोनों द्वारा दी जानेवाली बहिभुंजापिका २-२ । दास के भाग जाने पर बन्धक का धन बहिभुंजापक देंगे। इस काम में साक्षी अमुक-अमुक हुए । दोनों की अनुमति से श्री अमुक द्वारा यह लिखा गया । दोनों द्वारा समान रूप से देय लिखापन-शुल्क २ रु० हुआ ॥५८॥

सिद्धि । परम पूज्य आदि राजाओं की परम्परा में पूर्ववर्त्ती राजा श्रीलक्ष्मणसेनदेव के २९९ वें वर्ष में भादों शुक्ल चतुदर्शी, शुक्रवार को , जो मास , पक्ष, तिथि और दिन के क्रम से समय को अंक में लिखने पर लसं २९९, भाद्र शुदि १४, शुक्र (लिखा जायगा) , फिर परमपूज्य आदि पुण्यावलोक, सभी प्रक्रियाओं से सुशोंभित, महाराजाधिराज श्री अमुकदेव के तिरहुत में राज्य करने के समय अमुक देश से सम्बद्ध अमुक परगने से संलग्न अमुक गाँव से ठाकुर श्री अमुक चतुबीर व्यढि बन्धक रखने में अपने धनका प्रयोग करते है इनके धन के ग्राहक अमुक कैवर्त्त किसी आवश्यकता से एक चतुर्वारव्युढि अमुक को भुंजापक देकर चार रूप्य टंक लेकर बन्धक रखा । जहाँ बन्धक रखा, वहाँ बन्धक-रखाई चतुर्वारव्यूढि १ । बन्धकांक रूप्य टंक ४। यदि बहिःपात हो, तो प्रतिदिन ६ काकिनी बहिभुंजापक के रूप में दे दें । इस तरह से प्रतिदिन १ ॥, बहिभुंजापिका दोनों को देय २ रूप्य टंक । इसमें अमुक-अमुक व्यक्ति साक्षी हुए । दोनों की अनुमति से लिखा गया । लिखापन शुल्क दोनों पक्षों द्वारा देय । इति ॥५९॥

सिद्धि । परम श्रद्धेय आदि राजा लक्षमणसेनदेव के २९९ वें वर्ष के भाद्र शुक्ल चतुर्दशी, तदनुसार शुक्र दिन में तथा मास, पक्ष एवं तिथि के क्रम से लिखने पर जहाँ अंक में संवत् लसं २९९, भाद्र शुक्ल १४, शुक्र (दिन) (होता है), में समस्त प्रक्रिया से सुशोंभित अमुक देवपाद के शासनान्तर्गत तिरहुत में , अमुक ग्राम में सदुपाध्याय श्री अमुक शूद्री के क्रय के हेतु अपने धन का प्रयोग करते हैं । इनसे धन के ग्राहक अमुकनामा कायस्थ कैवर्त्त शुद्र श्री

---

१. *जातिभास्कर, पृ० १७५:*

"निषादो भार्गवं सूते दासं नौकर्मजीविनम् ।
कैवर्त्तमिति यं प्राहुरार्यावर्त्त निवासिनः ॥"

वे लोग नाव चलाकर अपनी जीविका चलाते हैं । इसलिए, आर्यावर्त्त के लोग इनको कैवर्त्त कहते हैं । उसी पुस्तक में आगे चलकर लेखक का ने स्पष्ट कर कवर्त्त के जन्म सम्बधी बातों का जिक्र किया है । शब्दकल्पद्रुम भाग-३, पृ० १२२ होता है । यह अन्य जाति से हीन, जाल बनाकर, उसके द्वारा पक्षी और जलचरों को आजीविका के लिए पकड़ते हैं, तथा वर्षाकाल में नाव डालकर लोगों को पार करते हैं, जिससे उनकी आजीविका चलती है । यह धीवर 'मल्लाह' नाम से विख्यात है (पृ० १८७) । लेकिन, लिखनावली के पत्रों से ज्ञात होता है कि कैवर्त्त जाति मिथिला में अलग थे । उनका पेशा दास-कर्म भी था ।

अमुक की बेटी अमुक नाम की कन्या गौरांगी गोरीवराटिका [1] रूप में चार पुराण लेकर केवट शूद्र श्री अमुक के लड़के श्री अमुक को विवाह-विधि से बेच दिया। जहाँ बेची गई शूद्री (प्राणी) १। विक्रयांक ४। इस विषय में अमुक-अमुक साक्षी हुए। दोनों की अनुमति से श्री अमुक द्वारा लिखा गया। दोनों द्वारा दिया जानेवाला लिखापन-शुल्क १॥, जहाँ केवट गोरे ओडपु ४, अमातादिपु ८-४ इति ॥६०॥

सिद्धि। लक्ष्मण-संवत् २९९, कार्त्तिक शुदि पंचमी, रविवार को महाजन चतुर्वेदी श्री अमुक महाशय को तीन खदुका-कुल, कैवर्त्त और धीवर अमुक-अमुक नाम के ऋणपत्र देते हैं। साहु श्री अमुक को जामिन रखकर प्रति व्यक्ति १० रूप्य टंक सवैया ब्याज की व्यवस्था से लिया, जिसमें लिये गये टंक ३०। जामिन साहु श्री अमुक को इस व्यवस्था के अनुसार अमुक के कुल १० टंक के लिए दर्शक लग्नक होंगे, कैवर्त्त अमुक के १० टंक के लिए प्रत्यायक-लग्नक होगें और धीवर अमुक के दातृ लग्नक होगें। जहाँ मैं प्रत्यायक लग्नक रूप में हूँ, वहाँ उसकी बेइमानी की स्थिति में (उसके बदले) धन दूँगा। जहाँ दर्शक-लग्नक हूँ, वहाँ उस व्यक्ति के साथ साक्षात्कार कराऊँगा। यदि उस व्यक्ति को दिखाने में असमर्थ होऊँ, तो उसका धन दूँगा। जहाँ दातृ लग्नक हूँ वहाँ उसी से उसका धन दिलाउँगा या खुद दूँगा। इसमें अमुक-अमुक साक्षी बनाये गये ॥६१॥

सिद्धि। अमुक नगर में अमुक-अमुक नाम के चार भाइयों ने आपस में झगड़कर सम्बन्ध-विच्छोद-पत्री की माँग की है। हमलोगों ने अपने पिता और पितामह के साधारण चल और अचल सम्पत्ति में से अपने सबसे बड़े भाई को ज्येष्ठांश देकर सौदायिक स्त्रीधन [2] को छोड़कर आपस में (बचे हुए) धन को समान भाग में बाँट लिया, जिससे आगे चलकर आपस में कोई कलह न हो। इसके लिए अमुक-अमुक व्यक्ति साक्षी रखे गये ॥६२॥

सिद्धि। अमुक गाँव में लक्ष्मण-संवत् २९९, चैत्र वदी १४, गुरुवार, अमुक गाँव में महत्तम श्री अमुक को अमुक प्रजा ने अपनी भूमि के (कर-रूप में) देय २५ पुराण समर्पित किया, जिसमें प्रवेशित २० रूप्य टंक में यह प्रवेश-पत्र प्रदान किया गया ॥६३॥

सिद्धि। लक्ष्मण-संवत् २९९, चैत्र वदी १४, गुरुवार को अमुक नगर में समग्र प्रक्रियाओं से विभूषित महाराजाधिराज श्री अमुक सिंहदेव के चरणों में गाँव के चौधरी श्रीसुरारि ने चार सौ रूप्य टंक वर्त्तमान वर्ष के कर के रूप में राउत श्रीकरभू के द्वारा भाण्डागार में अर्पित कराया, जिसमें समर्पित रूप्य टंक ४००, उस कर की यह सूचना दी गई ॥६४॥

---

१. *विवादचन्द्र, पृ० ५१।*

२. *विद्यापतिः 'विभागसार', अप्रकाशित हस्तलिखित (लेख की प्रति) पृ०१९: अविवाहिता वा विवाहिता कन्या को पतिकुल वा भाई अथवा माता-पिता से जो धन प्राप्त होता था, वही उसका सौदायिक धन कहलाता था। स्त्रीधन के सम्बन्ध में विस्तृत वर्णन के लिए देखें 'विभागसार' एवं मेरा निबन्ध, 'मिथिलामिहिर', विद्यापति -स्मृति -अंक, ३ नवमबर, १९६८, पृ० १२-१३; 'विद्यापति -वाङ्मय', पृ० ११-१२; 'विद्यापतिक रचनाक आधार पर तद्युगीन मिथिलाक सामाजिक जल्न' (अप्रकाशित शोध -प्रबन्ध), पृ० १७५—७७।*

सिद्धि। अमुक नगर से समस्त प्रक्रिया से विराजमान, शत्रुराजा-रूपी कंस के लिए कृष्ण के समान, शिवभक्तिपरायण, महाराजाधिराज समरविजयी श्रीमान् अमुक देवपाद गाँव के चौधरी श्रीवनमाली को संवाद देते हैं। आपको ज्ञात हो कि आपके पास राउत श्रीमदनसिंह महाशय का इस वर्ष का रक्षित द्रव्य एक सौ रूप्य टंक रह गया है , उसमें इस वर्ष वा चालू वर्ष के १०० रूप्य टंक इस पत्र के अनुसार उन्हें शीघ्र दे दें और पिछले वर्ष का बचा हुआ द्रव्य भी दे देंगे ॥६५॥

सिद्धि। लसं २९९, वैशाख शुदि (शुक्ल पक्ष) तृतीया सोमवार को पाटलिपुर नगर में भट्ट श्री अमुक शर्मा नायक श्रीअमुक को निस्तार-पत्री (मुक्तिपत्र) देते हैं। पहले हमसे जो हजार रुपये प्रतिमाह प्रतिमुद्रा चार पण ब्याज की दर से स्थिर कर ऋण-रूप में आपने लिया था, उसमें से आजतक कुछ भी नहीं दिया है। सम्प्रति मध्यस्थ पंचों ने उस धन का द्विगुण देय निर्धारित कर दिलाया है। अतः दो हजार मुद्राएँ लेकर हमने आपको (ऋण से) मुक्त किया, उसके लिए यह निस्तार-पत्री (मुक्ति-पत्र) दी गई। इस कार्य के लिए अमुक-अमुक साक्षी बने और बनाये गये ॥६६॥

सिद्धि। गंगातट पर पंडित श्री अमुक शूद्र श्री अमुक को निस्तार-पत्री [१] (मुक्ति-पत्र) देते हैं। हमारे न्यायोचित अर्जित धन से तुम सेवक ने बड़ी सेवा की, उस सेवा से सन्तुष्ट होकर हम तुम्हें चन्द्र, सूर्य-अवधि के लिए मुक्त करते हैं। तुम सुख से जहाँ रहो या जहाँ जाओ, वहाँ कहीं भी तुम्हारे धन में हमारा अधिकार नहीं होगा। इसमें धर्म ही साक्षी हैं ॥६७॥

सिद्धि। लसं २९९, कार्तिक शुक्ल ५, बृहस्पतिवार को अमुक गाँव के रहनेवाले उपाध्याय श्री अमुक शर्मा को लेखी श्री अमुक ऋणपत्री देता है। चार महीने की अवधि के लिए श्रीमान् ने हमसे बीस टंक ऋण-रूप में लिये थे। जहाँ ऋण-रूप में गृहीत रूप्य टंक २०। मासावधि ४। यदि कदाचित् निर्धारित अवधि के भीतर रुपये नहीं देते हैं, तो लोक-व्यवहार के अनुरूप सूद-दर-सूद प्रति महीने प्रति रुपये चार पण के हिसाब से बढ़ेगा। उसमें मासिक सूद समस्त ५ पुराण [२]। इस कार्य में अमुक-अमुक साक्षी बने और बनाये गये ॥६८॥

सिद्धि। लसं २९९, माघ शुक्ल ५, शुक्रवार को अमुक नगर में साहु [३] श्री अमुक को (अथवा) वणिक् श्री अमुक को श्री अमुक ऋणपत्री देते हैं। यहाँ हमने आपसे ऋण के रूप में एक सौ पुराण कपर्दक प्रति वर्ष सवैया ब्याज की दर पर लिये। यहाँ लिये हुए कपर्दक पुराण १००। वर्ष-भर में सवैया ब्याज के साथ देय पुराण २५ एवं १२५ (ब्याज २५ एवं मूल १००=१२५)। इस कार्य में साक्षी अमुक-अमुक बनाये गये और बने ॥६९॥

---

१. *विस्तृत वर्णन के लिए देखिए तत्कालीन ग्रन्थ, विवादचन्द्र, पृ० ४९–५३; लेखक का निबन्ध, 'विद्यापतिकालीन मिथिला में दास-प्रथा', दि जर्नल ऑव दि बिहार रिसर्च सोसाइटी, १९६७ ई०, पृ० २९३–२९५।*

२. *सोलह पणों का एक पुराण होता है। २० टंक का चार पण प्रति टंक के सूद के अनुसार २० × ४= ८० पण सूद हुआ। अतएव, ८० पण = ५ पुराण हुए।*

३. *महाजन; बनिया का आदरपूर्ण सम्बोधन।*

सिद्धि । लसं २९९, माघ वदि ७, रविवार को ठाकुर श्री अमुक को वणिक् साहु श्री अमुक ऋणपत्री देते हैं । हमने आपसे कन्या के विवाह की आवश्यकता से दस (रूप्य) टंक प्रतिमाह प्रति टंक ६ पण ब्याज निर्धारित कर लिये । उसमें गृहीत रूप्य टंक १०, प्रतिमास प्रति टंक का ब्याज २ । इस कार्य में अमुक-अमुक साक्षी बने और बनाये गये ॥७०॥

सिद्धि । लसं २९९, कार्तिक शुक्ल रविवार को अमुक ग्राम में ठाकुर श्री अमुक को पैकार[1] श्री अमुक ऋण पत्री देता है । मैंने श्रीमान् महाशय से पन्द्रह रूप्य टंक वाणिज्य के लिए खेपी-व्यवस्था[2] से लिये । जहाँ गृहीत रूप्य टंक १५ । प्रति टंक की खेपी १ में (प्रति) खेपी एक शिवाक्ष[3] दूगाँ । वहाँ टंक का लाभ (ब्याज) शिवाक्ष ३ तथा लाभ और मूलधन दोनों मिलकर रूप्य टंक १८ । इस कार्य में अमुक-अमुक साक्षी बनाये गये और बने ॥७१॥

सिद्धि । लक्ष्मण-संवत् २९९, मार्ग (अगहन) शुक्ल ५, बुधवार को गृहस्थ श्री अमुक साहु श्री अमुक को व्यवस्था-पत्री देता है । मैंने आपसे दस रूप्य टंक मोला व्यवस्था से लिये । धान उपजने के समय प्रति टंक के मूल्य से १० खारी[4] धान मैं दूँगा । यहाँ लिये गये रूप्य टंक १० । दातव्य धान १०० खारी । इस कार्य में अमुक-अमुक साक्षी बनाये गये और बने ॥७२॥

सिद्धि । लक्ष्मण-संवत् २९९, आषढ कृष्ण ९, सोमवार को गृहस्थ श्री अमुक वणिक् साहु श्री अमुक को व्यवस्था-पत्री देता है । मैंने आमसे आधी व्यवस्था से दो टंक लिये । जिस व्यवस्था के अनुरूप प्रति टंक के लिए चार धान्य-मानी[5] देय होगा । धान की उपज के समय मैं आपको आधी के सहित २ टंक दूँगा । जहाँ देय मूल्य (धन) टंक २ । आधी के रूप में देय धान्य मानी ८ । इस कार्य में अमुक-अमुक साक्षी बनाये गये और बने ॥७३॥

सिद्धि । लक्ष्मण-संवत् २९९, कार्तिक शुक्ल ५, बृहस्पतिवार को चार व्यापारी एक साथ व्यवसाय करने के लिए परस्पर व्यवस्था-पत्र देते हैं । हम चारों ही किसी महाजन के धन से व्यापार करने के लिए जा रहे हैं । व्यापार का कार्य सम्पन्न हो जाने पर मूलधन महाजन को दे देंगे । लाभ का धन हमलोग बराबर-बराबर बाँटकर लेंगे । इस कार्य में अमुक-अमुक साक्षी बनाये गये और बने ॥७४॥

सिद्धि । लक्ष्मण-संवत् २९९, माघ कृष्ण १०, शुक्रवार को अमुक नगर में साहु श्री अमुक को नायक श्री अमुक ऋणपत्री देते हैं । हमने दस तोले सोना बन्धक रखकर आपसे बीस रूप्य टंक ऋण-रूप में, प्रति मास चार पण ब्याज निर्धारित करके, लिये । जहाँ बन्धक में रखा गया

---

१. *फुटकर माल बेचनेवाले व्यापारी ।*

२. *उतना माल, बोझ, जितना एक बार में ढोया जा सके; एक बार का बोझा; बोझ ढोनेवाले (आदमी, चौपाये, गाड़ी आदि) का एक बार आना -जाना; एक फेरा ।*

३. *रुद्राक्ष; इससे ज्ञात होता है कि विद्यापतिकालीन मिथिला में सूद के रूप में रुद्राक्ष देने की प्रथा थी ।*

४. *सोलह द्रोण की एक तौल; विवाद -चिन्तामणि, पृ० ८७: 'द्रोणै : षोडशभिः खारी' । विस्तृत वर्णन के लिए द्रष्टव्य मेरा शोध - प्रबन्ध पृ०२६७ ।*

५. *सोलह सेर का अन्न का मान ।*

(सोना) तोला १० । प्रति माह प्रति टंक ब्याज समग्र देय पुराण ४ । इस कार्य में अमुक-अमुक साक्षी बनाये गये और बने ।।७५।।

सिद्धि । लक्ष्मण-संवत् २९९, फाल्गुन कृष्णपक्ष,७, सोमवार को अमुक-अमुक ग्राम में साहु श्री अमुकदत्त ने राउत श्री अमुक की एक सवत्सा गाय और हल में जुतने में पूर्ण समर्थ एक बैल तीन टंक के ऋण से (बन्धक में) लिये । जहाँ गृहीत टंक ३ । बन्धक में रखी हुई सवत्सा गाय १ । धुरन्धर बैल १ । बन्धक छुड़ाने तक ब्याज के रूप में गाय का दूध तथा बैल के जोतने का कार्य (महाजन) लेंगे । इस कार्य में अमुक-अमुक साक्षी बनाये गये और बने ।।७६।।

सिद्धि । लक्ष्मण-संवत् २९९, वैशाख शुक्ल १२, शनिवार को अमुक गाँव में कायस्थ ठाकुर श्री अमुक को वणिक् सेठ श्री अमुक ऋणपत्र देते हैं । प्रचण्ड राजदण्ड के भय से तथा राजा के पदाधिकारियों के ताड़न के भय से बीस रूप्य टंक, प्रति टंक एक पण ब्याज की दर से लिये । जहाँ गृहीत टंक २० । प्रतिदिन ब्याज १ (पण) । इस कार्य में अमुक-अमुक साक्षी बनाये गये और बने ।।७७।।

सिद्धि । लक्ष्मण-संवत् २९९, भाद्र कृष्णपक्ष १२, मंगलवार को अमुक गाँव में वैश्य वणिक् श्री अमुक-अमुक गुप्त को केवट श्री अमुक दास ऋणपत्री देते हैं । धान की उपज के समय तक के लिए मैंने आपसे दस खारी धान डेढ़ी-व्यवस्था से लिया । जहाँ गृहीत धान खारी १० । इसका (डेढिया के रूप में) देय धान खारी ५ । अवधि धान की उपज (अगली फसल) तक की । इस कार्य में साक्षी अमुक-अमुक बने और बनाये गये ।।७८।।

सिद्धि । लक्ष्मण-संवत् २९९, कार्तिक शुक्ल बृहस्पतिवार को पाटलिपुरनगर में कायस्थ श्री अमुकदत्त को वणिक् साहु श्री अमुक व्यवस्था-पत्री देते हैं । मेरे पास आपका जो पुराणा ऋण था, उसमें से जो दिया, वह तो दे ही दिया, जो बचा हुआ है, उससे मैं व्यापार करूगाँ। व्यापार से जितना लाभ होगा, उस धनलाभ का चौथा हिस्सा आपको प्रति खेप दिया करूगाँ। यदि नहीं दूँगा, तो सूद सहित (मूल) देय होगा । इस कार्य में अमुक-अमुक साक्षी बनाये गये और बने ।।७९।।

सिद्धि । लक्ष्मण-संवत् २९९, श्रावण शुक्ल ५, बृहस्पतिवार को अमुक नदी के तट पर राउत श्री अमुक को धीवर श्री अमुक व्यवस्था-पत्री देता है । प्रतिमास भाड़ा देना स्वीकार कर मैं आपकी नाव अपने कार्य के लिए लेता हूँ । इस नाव से मैं घटवारी का कार्य करूँगा । कार्य समाप्त हो जाने पर हर महीने का भाड़ा और नाव लाकर दे दूँगा । जहाँ नाव १ प्रति माह का (भाड़ा) टंक २ । यदि मेरी असावधानी से अथवा दुर्योग से नाव टूटेगीं, तो पंच के बीच निर्धारित नौका का मूल्य भी दूँगा । इस कार्य में अमुक-अमुक साक्षी बनाये गये और बने ।।८०।।

लक्ष्मण-संवत् २९९, माघ शुक्ल १४, बृहस्पतिवार को अमुक ग्राम में महाजन ठाकुर श्री अमुक को ऋणधारी राउत श्री अमुक क्रियापत्र देते हैं .। चूँकि, मैं आपसे दो सौ पुराण का ऋण लिये हुए हूँ, इसलिए विना वह ऋण दिये आपको छोड़ मैं अन्यत्र नहीं जाऊँगा । यदि जाऊँगा, तो अनिष्ट फल का भाजन बनूँगा । यह संकल्प कर शिवलिंग को छूता हूँ, यह सत्य

ह । यह बात दो पंक्तियों में अच्छी लिपि (एक समान स्पष्ट अक्षरों) में लिख ली जाय ॥८१॥

श्री देवदत्त तप्त मार्गाकर्षण-दिव्य [1] में प्रतिज्ञा करता है कि मैंने श्रीपद्मा की योनि में वीर्य का निक्षेप नहीं किया, यह सत्य है। उसी दिव्य में प... भी प्रतिज्ञा करती है कि मेरी योनि में वीर्य का निक्षेप नहीं हुआ, यह सत्य है। श्रीविष्णुमित्र जलमज्जन दिव्य में प्रतिज्ञा करता है कि श्रीशिवदास का जो धन मैंने ऋण के रूप में लिया था, वह चुका दिया, यह सत्य है। पद में अंकित मेरा देय हैं –

सूर्य, चन्द्रमा, हवा, अग्नि, आकाश, पृथ्वी, जल, हृदय, यम, दिन और रात्रि तथा दोनों सन्ध्याएँ एवं धर्प–ये सब मनुष्य के कर्त्तव्य को जानते हैं। यह श्लोक प्रतिज्ञापत्र में लिखा जाना चाहिए। (और) प्रतिज्ञा दो पंक्तियों में सुवाच्य समान अक्षरों में लिख ली जाय। अगहन, चैत और वैशाख सभी दिव्यों के लिए उपयुक्त समय है। शिशिर, वसन्त और वर्षा ऋतुओं में अग्निदिव्य उपयुक्त है। शरद् और ग्रीष्म ऋतु में जलदिव्य उपयुक्त हैं ॥८२॥

स्वस्ति। अमुक नगर में विविध विरुदावलियों से विराजमान श्री अमुक राज्य में श्री अमुक-अमुक (दो राजे) परस्पर व्यवस्था करते हैं। आज से हम दोनों पारस्परिक शत्रुता का नाश करेंगे, मित्रता का पालन करेंगे। एक दूसरे का हित करेंगे। एक दूसरे के कष्ट का निवारण करेंगे। (एक दूसरे की) राज्य-सीमा का अतिक्रमण नहीं करेंगे। इस कार्य में राउत श्री अमुकसिंह मध्यस्थ बनाये गये। उन्होने मध्यस्थता करते हुए स्वीकार किया कि इन दोनों के बीच, जो इस सन्धिनियम का उल्लंघन करेगा, उनको मैं अपने धन और प्राण लगाकर रोकूँगा। यदि नहीं रोकूँगा, तो कृतघ्न व्यक्ति की तरह पापभाजन बनूँगा ॥८३॥

---

१. *शपथ; परीक्षा; मानव के प्रमाण से अनिर्णीत जो निर्णय हो, वह लोक-प्रसिद्ध दिव्य कहलाता है। यद्यपि यह भी एक प्रकार की शपथ ही है, तथापि लिखित, साक्षी, मुक्ति तीनों मानवीय प्रमाणों से भिन्न जो प्रमाण हो, वही दिव्य प्रमाण है। इसलिए, दिव्य प्रमाण भावैकगोचर नहीं, अपितु भावाभावविशेषणगोचर है दिव्य ९ प्रकार के होते हैं –घट, अग्नि, जल, विष, कोष, त्रण्डुल, माष,फार एवं धर्मज। बृहस्पति भी दिव्य के नौ प्रकार मानते हैं। उनका मत है कि ब्राह्मण को घट दिया जाय, क्षत्रिय को अग्नि दी जाय, वैश्य को सलिल दिया जाय, और सामान्य लोगों को कोष दिया जाय।*

१. *जलमज्जन-दिव्य में शपथ लेनेवालें को पानी में बैठाकर तीन वाण छोड़े जाते हैं। बाण नहीं लगने पर वह निर्दोष माना जाता है।*

सिद्धिग उपाध्याय श्री अमुक के पिता उपाध्याय श्री अमुक शर्मा से कायस्थ श्री अमुक ने दस रूप्य टंक मूल्य लेकर सपत्नीक अमुक शूद्र को (उनके हाथ) बेचा, यह मैं जानता हूँ । यह सत्य है । हजार अश्वमेघ से भी सत्य अधिक श्रेयस्कर है । यदि साक्षी जानी हुई सच्ची बात नहीं कहता है, तो उसके पितर काँप जाते हैं । यदि साक्षी झूठ बोलता है, तो वह नग्न, मुण्ड और कपाली बनकर भूख और प्यास से पीडित भिखारी बनता है और क्रुद्ध शत्रुओं के समूह में फँसता है ॥८४॥

श्री विद्यापति-रचित लिखनावली में व्यवहार-लिखन-परिपाटी नाम की चौथी ग्रथना समाप्त हुई ।

सूर्य, चन्द्रमा, वायु, आकाश, जल, ह्रदय, यम, रात, दिन, दोनों, सन्ध्याएँ और धर्म–ये सब मनुष्य की वृत्ति को जानते हैं । यह उक्ति (सामान्यतः सब लिखनों में) लिखी रहनी चाहिए ॥८५॥

उच्च वर्ग के लिखने में

अमुक की अष्टाङ्गप्रणामपत्री, प्रणामपत्री,नमस्कारपत्री, मस्तक पर कर-कमल रखे हुए (अमुक की) नमस्कारपत्री, भूमि पर नतमस्तक की नमस्कारपत्री, सेनापत्री अथवा अमुक के चरण में दण्डवत् प्रणाम करते है; नमस्कार करते है, मस्तक पर रखकर नमस्कार करते हैं, आदरपूर्वक अभिवादन करते हैं, मस्तक पर रखकर सेवा करते है, मस्तक झुकाकर नमस्कार करते है इत्यादि (सामान्य लेखन-नियम हैं) ॥८६॥

निम्नं वर्ग के लिखने में

आदेशपत्री, आज्ञापत्री, आशीर्वाद-पत्री, अनुग्रह-संवादपत्री, आदर-सहित संवादपत्री अथवा श्री अमुक चरण को आदेश देते हैं, कृपापूर्वक संवाद देते हैं इत्यादि सामान्य पद्धति ॥८७॥

सामान वर्ग के लिखने में

कार्यपत्री, कुशलपत्री, विज्ञापनपत्री, निवेदनपत्री, विनयपत्री, प्रेमपत्री, सम्बोधनपत्री, आलिंगनपत्री, यथोचितपत्री अथवा विज्ञापित करते है, विनय करते है इत्यादि (सामान्य पद्धति) ॥८८॥

शत्रुदल को पराजित कर, उसकी धनराशि से जिसने याचक-समुदाय को सन्तुष्ट किया, अपने बाहुबल से अर्जित सप्तरी-राज्य में जिसने राज्यसत्ता स्थापित की और युद्ध में अपने बन्धु के साथ निर्दयतापूर्ण व्यवहार करनेवाले अर्जुन राजा का जिसने वध किया, उसी राजा पुरादित्य ने इस लिखनावली की रचना करवाई ।